HINDI PROSE-DRAMA, NOVEL, STORIES **AND ESSAY**

M.A. Hindi , Semester-I , Paper-IV

Complied by

DR. M. MANJULA
M.A., M.Phil. Ph.D.,
Lecturer in Hindi
Ramakrishna Hindu High School
Amaravathi, Guntur

Director
Dr.Nagaraju Battu
M.H.R.M., M.B.A., L.L.M., M.A. (Psy), M.A., (Soc), M.Ed., M.Phil., Ph.D.
Centre for Distance Education
Acharya Nagarjuna University
Nagarjuna Nagar-522510

Phone No.0863-2346208, 0863-2346222, Cell No.9848477441
0863-2346259 (Study Material)
Website: www.anucde.info
e-mail: anucdedirector@gmail.com

M.A. (Hindi): Hindi Prose-Drama, Novel, Stories and Essay

First Edition: 2021

Reprint : 2022

No. of Copies

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. (Hindi) Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is mean for limited circulation only

Published by

Dr.Nagaraju Battu

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Nagarjuna Nagar-522510

Printed at

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging aheadin the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasam.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna Universityhas started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com., M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004 onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson- writers of the Centre who have helped in these endeavours.

Prof. P. Raja Sekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER - I

PAPER - IV : HINDI PROSE

104HN21 -गद्य साहित्य - नाटक, उपन्यास, कहानी संग्रह, निबंध

<u>पाठ्य पुस्तकें</u> :

1.अ. निर्मला - प्रेमचन्द ।

आ. चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद ।

2.अ. एकांकी संग्रह - श्रेष्ठ एकांकी - संपादक - डॉ. विजयपाल सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नयी दिल्ली । 110 002

आ. चिन्तामणि - भाग - 1 रामचन्द्र शुक्ल ।

<u>पाठ्यांश</u> :

1. 1. निर्धारित उपन्यास और कहानियों का तत्व निरूपण ।

2. निर्धारित नाटक और एकांकियों का तात्विक अध्ययन ।

2. 1. सात श्रेष्ठ कहानियाँ - संपादक : शारदा देवी वेदालंकार, लोक भारती प्रकाशन, 15 - ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद । विस्तारपूर्वक - अध्ययन हेतु ।

2. गद्य विविधा : हिन्दी साहित्य भण्डार, 55, चौपाटिया रोड़, लखनऊ - 226 003 ।

3. निबंध : समीक्षात्मक अध्ययन

निबंधों की वस्तु

शुक्ल की जीवनदृष्टि

निबंधों की संरचना

शुक्ल की निबंध कला

रेखाचित्र : जीवनी, संस्मरण, रिपोर्ताज, यात्रा वृत्त- आदि विविध गद्य विधाओं का विवेचानात्मक अध्ययन ।

<u>सहायक ग्रन्थ</u> :

1.हिन्दी उपन्यास प्रवृत्तियाँ और शिल्प - शशिभूषण सिंहल ।

2.हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डॉ. एस.एन.गणेशन. राजकमल एण्ड संस, दिल्ली ।

3.हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास ।

4.हिन्दी साहित्य में निबन्ध का विकासः ओंकारनाथ शर्मा - अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।

5.हिन्दी नाट्टक उद्भव और विकास : दशरथ ओझा - राजपाल - दिल्ली ।

Content

		Page No.
1.	**'चन्द्रगुप्त' नाटक**	
	'चन्द्रगुप्त' नाटक	1-121.
	'चन्द्रगुप्त' नाटक में चन्द्रगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।	13-15
2.	चाणक्य का चरित्र-चित्रण कीजिए।	15-18
3.	सिंहरण का चरित्र-चित्रण कीजिए।	18-20
4.	पर्वतेश्वर का चरित्र-चित्रण कीजिए।	21-22
5.	आरभीक का चरित्र - चित्रण कीजिए।	22-24
6.	राक्षस का चरित्र - चित्रण कीजिए।	24-26
7.	अलका का चरित्र - चित्रण कीजिए।	26-29
8.	सुवासिनीका चरित्र -चित्रण कीजिए।	29-30
9.	मालविका का चरित्र - चित्रण कीजिए।	30-32
10.	'चन्द्रगुप्त' नाटक की एतिहासिक का विवेचन कीजिए।	32-34
11.	नाटक के तत्त्वों के आधार पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक की समीक्षा कीजिए।	35-39
2.	**निर्मला**	
1.	'निर्मला' उपन्यास में निर्मला का चरित्र - चित्रण कीजिए।	40-44
2.	उपन्यास के तत्त्वों पर 'निर्मला' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।	45-50
3.	'निर्मला' उपन्यास में तोताराम का चरित्र - चित्रण कीजिए।	50-51
3.	**चिन्तामणि**	
1.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की निबन्ध शैली पर लेख लिखिए।	52-55
2.	'भाव या मनोविकार' निबन्ध का सारांश लिखिए।	56-61
3.	'उत्साह' निबन्ध का सारांश लिखिए।	61-65
4.	'करुणा' निबन्ध का सारांश लिखिए।	66-69
	(अथवा)	
	'करुणा' निबन्ध में शुक्ल जी के भावों को स्पष्ट कीजिए।	
4.	**गद्य विविधा**	**70-71**
1.	महादेवी वर्मा कृत 'सोना' रेखाचित्र का सारांश लिखिए।	72-74

2. ‘घर लौटते हुए’ शीर्षक में बच्चन के भाव पर विचार कीजिए। 75-76

5. सात श्रेष्ठ कहानियाँ

1. कहानी के तत्त्वों पर ‘प्रेरणा’ कहानी की समीक्षा कीजिए। 77-80

1. 'चन्द्रगुप्त' नाटक - बाबू जयशंकर

सप्रसंग व्याख्या

1. **आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है।**

(अंक 1, दुश्य 2, पृ. 39, पं. 13 - 14)

प्रसंग :-

यह उद्धरण युग प्रवुर्तक बाबू जयशंकर प्रसाद जी कृत 'चन्द्रगुप्त' नाटक से लिया गया है। बाबू जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि, सफल नाटककार तथा अनुपम कथाकार हैं। उन्होंने चौदह नाटक लिखे हैं। उनमें अजातसत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं। चन्द्रगुप में उन्होंने नंद - वंस के नाश और चन्द्रगुप्त से राज्याभिषेक का वर्णन किया है। देशभक्ति तथा राष्ट्रीयवाद का यह उज्वल नाटक है।

(सारे उद्धणों (annotations) केलिए यही प्रसंग सिखें।)

संदर्भ :-

तक्षशिला के गुरुकुल का मठ था। कुलपति ने चाणक्य को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दी थी। परन्तु चाणक्य विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र पढाकर गुरु - दक्षिणा चुकाना चाहता था। इसलिए वह गुरुकुल में ही ठहरा था।

एक दिन चाणक्य और सिंहरण के बीच वार्तालाप हो रहो था। सिंहरण मालवगण - मुख्य का कुमार था। वह तक्षशिला में शिक्षा का अध्ययन कर रहा था। चाणक्य के यहाँ वह अर्थशास्त्र सीखता था। वह समझता था कि मालवियों केलिए अर्थशास्त्र की अपेक्षा अस्त्रविद्या की जरूरत अधिक थी। इसी कारण वह अर्थशास्त्र में पिछडा हुआ था। वह अपने गुरु चाणक्य से क्षमा माँगने लगा। उस समय सिंहरण ने चाणाक्य से उपर्युक्त वाक्य कहा।

टिप्पणी :-

1. यहाँ सिंहरण चाणक्य को यवनों के आगमन और उनके षड्यंत्र की सूचना देता है।
2. सिंहरण चाणक्य को आर्यावर्त में होनेवाले भयानक विस्फोट से सचेत रहने का संकेत करता है।

2. विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत - चरित्र है, और मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।

(अंक 1, दृश्य 1, पृ. 39, पं. 23 - 24)

संदर्भ :-

तक्षशिला के गुरुकुल का मठ था। एक दिन चाणक्य अपने शिष्य सिंहरण से बातें कर रहा था। सिंहरण चाणक्य को आर्यावर्त्त में होनेवाले भयानक स्फिोट की सूचना दे रहा था। इतने में तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक, वहाँ आया। उसने सिंहरण से उसका विशेष परिचय पूछा। सिंहरण ने इतना ही कहा कि वह तक्षशिला गुरुकुल का छात्र था। इस से असंतुष्ट होकर आम्भीक ने सिंहरण पर आरोप लगाया कि वह दुर्विनीत था। तब सिंहरण ने उपर्युक्त वाक्य कहा।

व्याखया :-

यहाँ सिंहरण ने अम्भीक कें आरोप का खंडन करते हुए कहा है कि वह दुर्विनीत नहीं, तक्षशिला की शिक्षा ने भी उसे अधिक विनम्र बनाया है। तक्षशिला के छात्र होने का उसे गर्व भी था।

टिप्पणी :-

इस में सिंहरण ने अम्भीक के आरोप का खण्डन करते हुए कहा है कि वह दुर्विनीत नहीं; बल्कि विनम्र है।

3. बाह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है; स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।

(अंक 1, दृश्य 1, पृ. 40, पं. 3 - 5)

संदर्भ :-

तक्षशिला के गुरुकुल के मठ में एक दिन चाणक्य और सिंहरण देश की परिस्थितियों पर बातों कर रहे थे। तब तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक वहाँ पहुँचा। उसने चाणक्य से पूछा - ''बोलो बाह्मण। मेरे राज्य में रहकर मेरे अन्न से पलकर मेरे ही **विरुद्ध** कुचक्रों का सृजन कर रहे हो?'' तब चाणक्य ने उपर्युक्त वाक्या कहा।

व्याख्या :-

चाणक्य ने आम्भीक को समझाया – ''बह्मण किसी के राज्य में नहीं रहता।'' वह किसी के अन्न से नही पलता। वह अपने राज्य में रहता है। वह अमृत होकर जीता है। वह सामर्थ्य रखते हुए भी माया – स्तूपों, (राज्यों) को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण केलिए अपने ज्ञान को दान करता है।

टिप्पणी :-

यहाँ चाणक्य ब्राह्मणों के प्रतिनिधि के रूप में बोलता है और बाह्मण धर्म को बताता है।

4. **गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है; अन्य आज्ञायें, अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं राजकुमार।**

(अंक 1, दृश्य 1, पृ. 40, पं 20 – 21)

संदर्भ :-

आम्भीक ने सिंहरण से कृचक्रों के बारे में अपने विचार प्रकट करने केलिए आज्ञा दी तो सिंहरण ने उपर्युक्त प्रसंग कहा।

व्याख्या :-

सिंहरण ने कहा – गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा का पालन होता है। दूसरे लोगों की आज्ञाओं का निरादर किया जाता है। गुरु के वचन ही शिरोधार्य होते हैं।

टिप्पमी :-

1. सिंहरण यहाँ बताता है कि आम्भीक के गुरु न होने के कारण उसकी आज्ञा का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।
2. प्रचीन काल में गुरु का महान आदर होता था और गुरु की आज्ञा का सच्चा पालन होता था।

5. मालव और मागध भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगें, तभी वह मिलेगा।

(अंक 1, दृश्य 1, पृ. 41, पं 41 – 42)

संदर्भ :-

सिंहरण मालव होने का और चंद्रगुप्त मागध होने का आत्माभिमान प्रकट करते हैं, तो चाणक्य उपर्युक्त वाक्य कहता है।

व्याख्या :-

चाणक्य सिंहरण से कहता है कि तुम मालव हो। इसी प्रकार यह (चंद्रगुप्त) मागध है। तुम मालव होने का अभिमान रखते हो और वह मागध होने का अभिमान रखता है। लेकिन यह अभिमान भूलकर आर्यावर्त का नाम लोगे तो वह प्राप्त होगा। अभिमान को भूल कर देशभक्ति पर अनुरक्त हों।

टिप्पणी :-

1. चाणक्य प्रांतीय भावना को छोडकर विशाल देश की भावना को धारण करने की सलाह देता है।
2. नाटककार प्रसाद की राष्ट्रीय – भावना की अभिव्यक्ति होती है।

6. मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर, और पत्थर से भी कठोर, करुणा केलिए निरवकाश हृदयवाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों केलिए सोच क्यों, अनागत भविष्य केलिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस बात की?

(अंक 1, द्रश्य 1, पृ. 42, पं. 31–34)

संदर्भ तथा व्याख्या :-

अलका सिंहरण को सलाह देती है कि मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए। तब सिंहरण ये वाक्य कहता है – ''जब मानव दानव से भी दुर्दमनीय, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करुणा केलिए अवकाश रहित हृदयवाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता । बीते हुये सुखों की चिंता करने की क्या जरूरत है। आनेवाले भविप्य केलिए भय क्यों । वर्तमान को मैं अपने अनुंकूल बना लूँगा। इसलिए किसी भी बात की चिन्ता नहीं होनी चाहिए।''

टिप्पणी :-

यहाँ मालूम होता है कि सिंहरण वर्तमान पर विश्वास रखनेवाला है।

7. **खींच ले ब्राह्मण की शिखा। शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते खींच ले। परन्तु यह शिखा नन्दकुल की काल सर्पिण है, वह तब तक न बन्धन में होगी, जब तक नन्द - कुल निःशेष न होगा।**

(अंक 1, दृश्य 5, पृ. 54, पं. 16-18)

संदर्भ :-

चाणक्य नंद की राजसभा में मगध - शासन - नीति की निंदा करता है। नंद उसे बाहर चले जाने को कहता है। तब चाणक्य उससे कहता है - ''सावधान नंद! तुम्हारी धर्मांधता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी। उसमें नंद - वंश समूल उखडेगा।'' इस पर नंद आज्ञा देता है - ''प्रतिहारी! इसकी शिखा पकडकर उसे बाहर करो।'' प्रतिहारी उसकी शिखा पकडकर घसीटता है। तब चाणक्य ये बातें कहता है।

व्याख्या :-

चाणक्य प्रतिज्ञा करता है - ''शूद्रराजा नंद के अन्न से पले हुए कुत्ते। खींचे ले ब्राह्मण की शिखा। यह शिखा नहीं, नंद कुल को काटनेवाली सर्पिणी है। यह तब तक बाँधी न जायेगी, जब तक नंवकुल का सर्वनाश नहीं होगा।''

टिप्पणी :- यहाँ नंद की दुष्टता और चाणक्य की प्रतिज्ञा व्यक्त हुई हैं।

8. **धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देखकर संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि - वैभव है। वह अपनी रक्षा केलिये, पुष्टि के लिये और सेंवा केलिए इतर वर्णो का संघटन कर लेगा।**

(अंक 1, दृश्य 9, पृ. 63, पं. 2-5)

संदर्भ :-

राजा पर्वतेश्वर की राज - सभा थी। चाणक्य ने बताया कि चन्द्रगुप्त मगध - विद्रोह का नेता होगा॥ पर्वतेश्वर ने इस प्रस्ताव का स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि में वृषल होने के कारण चंद्रगुप्त राजा बनने के योग्य नहीं था । तब चाणक्य ने उपर्युक्तवाक्य कहे।

व्याख्या :-

चंद्रगुप्त के वृषल होने की बात का ख़ंडन करते हुए चाणक्य ने पर्वतेश्वर से कहा – ''चन्द्रगुप्त के पूर्वज वरतुत क्षत्रिय थे। जब वे बौद्धिों के प्रभाव में आये तब उनमें आर्य – क्रियाओं का लोप हो गया और वे वृषल (शूद्र) बन गये। इसलिए चन्द्रगुप्त का क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं है।''

उन्होंने आगे कहा – ''धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं। मैं भी ब्राहमण हूँ। इसलिए योग्य व्यक्ति को देखकर उसका संस्कार करने का आधिकार मुझे है। ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाशवत बुद्धि – वैभव है। वह अपनी रक्षा केलिए योग्य व्यक्तियों को चुनकर उनका संस्कार करता है। वह उन्हें क्षत्रिय बनाता है। वह अपने पोषण केलिए जिन व्यक्तिग्रों का संस्कार करता है, वे वैश्य बनते हैं। वह अपनी सेवा केलिए जिनका संस्कार करता है, वे शूद्र बनते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण अन्य वर्णों का संगठन बनाता है।''

टिप्पणी :-

यहाँ ब्रह्मणत्व की श्रेष्ठता बतायी गयी है।

9. **मेरा देश है, मेरे पहाड हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक – एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक – एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं। फिर मैं कहाँ जाऊँगी यवन!**

(अंक 1, दृश्य 10, पृ. 64, पं. 5–7)

संदर्भ :-

आम्भीक अपनी बहन अलका पर षड्यत्र का आरोप लगाता है। अलका राज – मंदिर छोडकर अनिश्चित लक्ष्य की ओर निकल पडती है। जब वह कानन – पथ पर एकाकिनी हो घूम रही थी। तब यवन सेनापति सिल्यूकस उस वन में पहुँचता है। वह राजकुमारी अलका को देखकर पहचान लेता है और पूछता है कि तुम कहाँ जा रही हो? इस पर अलका उत्तर में उपर्युक्त वाक्य कहती है।

व्याख्या :-

अलका कहती है कि यह सारा देश मेरा ही है। यहाँ जो पहाड हैं, जो नदियाँ हैं, जो जंगल हैं ये सब मेरे ही हैं। इस भूमि का हर, एक कण मेरा ही है। इन्हीं अणुओं से मेरा शरीर निर्मित है। तब मैं कहाँ जाऊँगी। सारा देश मेरा ही है तो मैं कहाँ जाऊँगी? जन्म, जीवन और अन्त भी इसी देश में ही हो। यहाँ की सारी **पति** में मैं पल रटी हूँ। तब जाऊँ कहाँ। कहीं भी जाऊँगी नहीं।

टिप्पणी :-

1. इन वाक्यों में आर्यावर्त के प्रति अलका का अनन्य प्रेम तथा देश - भक्ति प्रकट होती हैं।
2. इनमें प्रसाद जी व अध्यात्मवाद की झलक मिलती है। शरीर पंच तचों से बनता है। मिट्टी उन पंच तावों में एक हैं। इस बात की ओर यहाँ संकेत मिलता है।

10. भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास - मांत्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीडा - कंदुक नहीं बन सकता।

(अंक 1, दृश्य 11, पृ. 66, पं. 13-15)

संदर्भ :-

सिन्धु तट पर दार्शानिक दाण्ड्यायन का आश्रम था। वे समारे के समस्त सुख - वैभव से परे थे। एक दिन सिकंदर के दूत एनिसाक्रीटीज उनसे मिला। उसने कहा कि सिकंदर ने उनका स्मरण किया और उनके उपदेश लेना चाहा। दाण्ड्यायन ने सोचा कि सिकंदर अपने वैभव का प्रदर्शन करना चाहते हैं। इसलिए वे उसके निमंत्रण पर हँस पडे।

व्याख्या :-

दाण्ड्यायन ने सिकंदर के निमंत्रण को अस्वीकार करते हुए उपर्युक्त वाक्य कहे। जिस व्यक्ति को भूमा का सुख और उसकी महत्ता का आभास होता है, उसे दुनिया के नश्वर चमकीले पदार्थ वश में नहीं कर सकते। वह किसी चलवान की इच्छा के अनुसार चल नहीं सकता। यह अपनी इच्छा के अनुसार ही चलता है। कोई शक्ति उसे अपने अधीन में नहीं कर सकती। वह सदा स्वतन्त्र होता है।

टिप्पणी :-

इसमें दाण्ड्यायन की महानता का परिचय मिलता है।

11. **कोई रोने केलिए है तो कोई हँसने केलिए।**

(अंक 2, दृश्य 4, पृ. 80, पं. 16-17)

संदर्भ :-

मालव में सिंहरण के उद्यान का एक अंश है। मालविका उसमें प्रवेश करती है।

व्याख्या :-

मालविका मन में सोचती है - ''फूल हँसते हुये आते हैं। वे मकरंद गिराकर मुरझा जाते हैं। वे आँसू (ओस) से पृथ्वी को भिगोकर जाते हैं। हवा का झोंका आता है। विश्वास फेंककर चला जाता है। पृथ्वी की सारी चीजें केवल रोने केलिए ही हैं।'' तुरंत वह अपना विचार बदल लेती है। वह सोचती है कि संसार में सबके लिये एक ही नियम नहीं है। कोई रोने केलिए है तो कोई हँसने के लिए। कोई कष्ट झेलने केलिए है तो कोई सुख का अनुभव करने केलिए। संसार दुख और सुख का मंच है। कोई रोनेवाला तो और कोई हँसनेवाला।

टिप्पणी :-

इस प्रसंग में मालविका के दुखी जीवन के प्रति संकेत मिलता है।

12. **यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि - भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है। यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।**

(अंक 3, दृश्य 2, पृ. 99, पं. 18-19)

संदर्भ :-

एक दिन चन्द्रगुप्त कार्नेलिया से पूछता है कि क्या तुम अपने देश को भूल जाओगी? तब कार्नेलिया उपर्युक्त वाक्य कहती है।

व्याख्या :-

कार्नेलिया कहती है -नहीं चन्द्रगुप्त। मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान प्रेम होता जा रहा है। मैं ने कहानियों में जो सुना था, उसी को अब यहाँ आँखों से देख रही हूँ। यहाँ के पेड - पौधे, पर्वत, वर्षा, गर्मी,

किसान - बालिकाएँ सब मेरी सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश है। यह त्याग और ज्ञान का पालना है। यह प्रेम की रंगभूमि है। ऐसी भारत - भूमि कभी भूली जा नहीं सकती है। कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्म - भूमि है तो यह भारत - देश मानवता की ही जन्म - भूमि है।'' भारत की महानता अनुपम है। यह मानवता की वेदी है।

टिप्पणी :-

बाबू जयशंकर प्रसाद के नाटकों की यह विशेषता है कि वे विदेशी पात्रों से भारत की महिमा का गान कराते हैं। इसी प्रकार इस नाटक में यहाँ विदेशी पात्र कार्नोलिया के द्वारा भारत का यश -गान कराते हैं।

13. जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल समाधान।

(अंक 4, दृश्य 4, पृ. 125, पं. 28-29)

संदर्भ :-

षड्यन्त्रकारियों ने राज - मंदिर में सोये हुए चन्द्रगुप्त को मार डालने का षड्यंत्र रचा था। यह विषय चाणक्य को पता चला था। इसलिए उन्होंने चन्द्रगुप्त की रक्षा करने और षडायंत्रकारियों को पकडने का उपाय सोचा। उन्हों ने मालविका को चन्द्रगुप्त की शय्या पर सोने के लिए कहा। मालविका ने प्रेमी प्राणों की रक्षा करने केलिए चाणक्य की बात मान ली। उसने चद्रगुप्त से कहा - ''यह प्रचीन राज - मंदिर अभी परिष्कृत नहीं, इसलिए मैंने चन्द्रसौ में आपके शयन का प्रबन्ध कर दिया है।'' यह बात सुनकर चन्द्रगुप्त ने चन्द्रसौध केलिए प्रस्थान किया।

व्याख्या :-

उस समय मालविका ने उपर्युक्त वाक्य कहा - ''जाओ प्रियतम! सुखी जीवन बिताने केलिए। मैं इस दुखी जीवन का अंत करने केलिए यहाँ रहूँगी। जीवन एक प्रश्न है तो मरण उसका स्थायी समाधान है। मृत्यु के बाद कोई प्रश्न शेष नहीं रहेगा। मृत्यु जीवन की चरम स्थिति तथा चरमावधि है।''

टिप्पणी :-

1. यहाँ मालविका का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। उसके प्रेम में त्याग है। वह अपने प्रियतम को बचाने केलिए स्वयं प्राण त्यागने केलिए भी तैयार होती है।

2. चाणक्य की कुटिल - नीति का भी पता चलता है। उसे लक्ष्य मुख्य है, साधन की कोई चिन्ता नहीं।

14. मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। ..... बौद्धिक विनोद कर्म था, सन्तोष धन था। .... मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है।

(अंक 4, दृश्य 5, पृ. 127, पं. 16-26)

संदर्भ :-

चंद्रगुप्त के माता - पिता चाणक्य से निर्वासित किये गये। इससे चंद्रगुप्त का हृदय क्षुब्ध हो उठा। वह स्वयं को चाणक्य के अधिकार क्षेत्र में परतंत्र मानने लगा। उसने चाणक्य से अपने माता - पिता के निर्वासित होने का कारण जानना चाहा। उसने कहा - ''आप न केवल साम्राज्य को ही नहीं वरन् मेरे कुटुम्ब को भी नियंत्रित करना चाहते हैं।''

व्याख्या :-

चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से उपर्युक्त वाक्य कहे - ''मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य राजनीति का नहीं, बल्किं करुणा का था। मेरा धर्म प्रेम का था। आनंद ही मेरे दीप थे। आकाश ही मेरा वितान था। घास से भरी पृथ्वी ही मेरी शय्या थी। काम करना ही मेरा विनोद था। सन्तोष ही धन था। मैं अपने उस ब्राह्मणत्व और अपनी जन्मभूमि को छोडकर कहाँ आ गया। सौहार्द्र के स्थान पर कुचक्र फूलों के स्थान पर कँाटे, प्रेम के स्थान में भय आ गया। इसलिए चन्द्रगुप्त। तुम अपने अधिकार ले लो। इससे मेरा पुनर्जन्म होगा। अब मेरा जीवन राजनीतिक षड्यंत्रों से कुत्सित और कलंकित बन गया है। मैं किसी काल्पनिक महत्व के पीछे पडा। मैं शांति खो बैठा और अपना स्वरूप भूल गया। अब मैं जान गया कि मैं कहाँ हूँ और कितना।''

टिप्पणी :-

इसमें चाणक्य के चरित्र पर प्रकाश पडता है। उसकी मानसिक वेदना का पता चलता है।

15. राज्य किसी का नहीं है। सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं, प्राच्य में सूर्योदय हुआ है। (अंक 4, दृश्य 6, पृ. 132-133)

संदर्भ :-

आम्भीक अलका से अपने कुकृत्यों के प्रति क्षमा माँगते हुए कहता है - ''मैं देश - द्रोही हूँ। नीच हूँ। अधम हूँ और राज्यासन के योग्य तू ही है।'' तब अलका उपर्युक्त वाक्य कहाती है।

व्याख्या :-

अलका आम्भीक के भ्रम को दूर करती हुई समझाती है – ''राज्य किसी का नहीं है। वह न तो राजा का है और न प्रजा का। राज्य तो सुशासन का है। जो राजा अपनी प्रजा के हित में अपने शासन को सुचारु ढंग से चलाता है, उस का राज्य होता है। आज हमारी जन्मभूमि के भक्तों में नया जागरण आया है। उनमें नयी स्फूतिं आयी है। प्राच्य में जो सूर्योदय हआ है, उसे तुम नहीं देख रहे हो, अर्थात् हमारे देश में चन्द्रगुप्त का नये सम्राट के रूप में उदय हुआ है। इसलिए इस अवसर का सदुपयोग करना चाहिए।''

टिप्पणी :-

राज्याधिकार की चर्चा हुई है और नव जागरण का विवरण हुआ।

16. **कृतज्ञता पाश है, मनुय की दुर्बलताओं के फन्दे उसे और भी दृढ करते हैं। परन्तु जिस देश ने तुम्हारा पालन – पोषण करके पूर्व उपकारों का बोझ तुम्हारे ऊपर डाला है, विस्मृत करके क्या तुम कृतघ्न नहीं हो रहे हो?**

(अंक 4, दृश्य 7, पृ. 135, पं. 27-29)

संदर्भ :-

राक्षस कार्नेलिया से कहता है कि उसके पूर्वज ब्राह्मण धर्म के थे और वह बौद्ध है। कार्नोलिया इसे कृंतघ्नता मानती हैं। राक्षस जवाब देता है कि वह कृतघ्न नहीं है और आर्यावर्त में कृतज्ञता पुरुषत्य का चिह्न है। तब कार्नोलिया उपर्युक्त वाक्य कहती है।

व्याख्या :-

कृतज्ञता एक बन्धन होती ही। मनुष्य की दुर्बलताओं के फन्दे उस कृतज्ञता को और भी दृढ बनाते हैं। मन की जो भावनायें होती हैं वे ही मनुष्य की दुर्बलताएँ होती हैं। तुम्हारे देश ने तुम्हारा पालन – पोषण किया है। इसलिए उसने तुम पर अपने उपकारों का भार डाला है। तुम उसे भूलकर यवन – सेना में चले आये हो। क्या यह अपने राष्ट्र के प्रति कृतघ्नता नहीं है। कृतज्ञता हृदय से होती है।

टिप्पणी :-

कार्नोलिया यवन युवती है। फिर भी उसे राक्षस का यवन – सेना में चले आना अच्छा नहीं लगता।

इसलिए वह राक्षस को कृतज्ञाता का पाठ सिखती हैं। यहाँ कार्नेलिया के भारत के प्रति अत्यन्त प्रेम का परिचय मिलता है।

17. राजा न्याय कर सकता है, परन्तु; ब्राह्मण क्षमा कर सकता है।

(अंक 4, दृश्य 13, पृ. 148, पं. 30)

संदर्भ :-

चाणक्य दांड्यायन के आश्रय में था। एक दिन प्रात:काल वह आँख मूँदने - खेलने लगा। मौर्य ने चाणक्य को मारना चाहा क्यों कि वह प्रतिशोघ लेना चाहता था। साथ ही चन्द्रगुप्त के निष्कंटक राज्य की स्थापना करना चाहता था। इसलिए छुरी मारकर चाणक्य को मारना चाहा। इतने में सुवासिनी दौडकर वहाँ आयी। उसने मौर्य का हाथ पकड लिया। चाणक्य बच गया। अलका और सिंहरण भी वहाँ पहुँचे। चन्द्रगुप्त भी अपनी माता के साथ वहाँ पहुँचा। उसने सुवासिनी के द्वारा किये गये काम को बड़ा अपराध माना। उसने यह भी बताया कि वध केलिए प्राणदंड दिया जाता है। तब चाणक्य ने कहा कि उसका वध नहीं हुआ है और वह जीवित है। इसलिए चाहे तो मौर्य न्यायाधिकरण से क्षमा की प्रार्थना कर सकता है। चन्द्रगुप्त की माँ चाणक्य की बातों पर आश्चर्य प्रकट करती है। तब चाणक्य ने उपर्युक्त प्रसंग का वाक्य कहा।

व्याख्या :-

चाणक्य का विचार था - ''राजा न्याय कर सकता है। वह अपराधी को दंड दे सकता है। परन्तु ब्राह्मण अपराधी को क्षमा कर सकता है।'' राजा अपने शासन में हे अपराधी को दंड देता है जिस से देश में शांति की स्थापना होती है। दण्ड देना भी आचेत है। लेकिन ब्राहण अपराधी को क्षता करता है।

टिप्पणी :-

1. यहाँ चाणक्य के क्षमागुण का परिचय मिलता है। उसकी कूट - नीति की आलोचना करनेवाले भी उसके इस दया - गुण की अवश्य प्रशंसा करते हैं। इसी में चाणक्य की महानता निहित है।

प्रश्न और उत्तर

प्र.1. 'चंद्रगुप्त' नाटक में चन्द्रगुप्त का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

नाटक के शीर्षक से ही पता चलता है कि 'चद्रगुप्त' नाटक का नायक है। वह धीरोदात्त नायक है। ऐंतिहासिक सत्य का निर्वाह करने के कारण उसको बहुत कुछ चाणक्य के संकेत पर चलना पडता है जिससे उसके चरित्र के स्वतंत्र विकास में कहीं - कहीं वाधा पहुँचती है। फिर भी उदार भावनाओं का उसके चरित्र में अभाव नहीं। विविध घटनाओं और सारे पात्रों को केन्द्रबिन्दु बनता है।

2. प्रवेश :-

बालकों की - सी चपलता, देश - प्रेम संबधी दृष्टिकोण लेकर चंद्रगुप्त रंगमंच पर आता है। ''हम मगघ हैं और यह (सिहरण) मालव। अच्छा होता कि यहाँ गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा देते।'' चंद्रगुप्त का यह कथन सीमित मनोवृत्ति का परिचय देकर दर्शकों को एक बार चौंका देता है। परंतु दूसरे ही क्षण वह कहता है, ''आत्म - सम्मान के लिए मर मिटना ही जीवन है।'' इन बातों से वह अपने गौरवपूर्ण पद की रक्षा कर लेता है।

भारत के भावी पतन को देखकर चाणक्य चिंतित हो जाता हैं तो चंद्रगुप्त कहता है - ''यह चंद्रगुप्त आपके चरणों की शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ भी न कर सकेंगे।'' इससे उसके अतुलित आत्म - विश्वास का परिचय प्रकट होता है।

3. अनुपम वीरता :-

चंद्रगुप्त महान वीर है। यवन - सेनापतियों के घिरे रहने पर भी असाधारण वीरता दिखाकर सुरक्षित निकल जाता है। चाणक्य और सिंहरण जब दोनों उसे छोडकर चले जाते, तब भी वह धैर्य और साहस नहीं छोडता। युद्धक्षेत्र के समीप सैनिकों को उत्साहित करते हुए वह कहता है - ''चंद्रगुप्त युद्ध करना जानता है और विश्वास रखें। उसका जयघोष विजयलक्ष्मी का मंगल गान है।'' उसकी बीरता की प्रशंसा मित्र और शत्रु दोनों करते हैं। महात्मा दाँड्यायन के शब्दों में - ''चंद्रगुप्त एक वीर युवक है।'' पर्वतेश्वर भी कहता है - ''मैं क्षमता रखते हुए भी जिस कार्य को न कर सका, वह कार्य चंद्रगुप्त ने किया।''

4. धीरता :-

चंद्रगुप्त धीरता का प्रतिरूप है। यवन - शिबिर में जाकर, यवन सेनापतियों से और आम्भीक जैसे देशद्रोहियों से घिरे सिकंदर के सामने वह अत्यन्त साहसपूर्वक निर्भीकता से कहता है - ''मुझे लोभ से पराभूत गांधार राज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिए। मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ। परंतु यवन लुटेरो की सहायता से नहीं।'' इस में धीरता के साथ - साथ स्पष्टवादिता का भी परिचय मिलता है।

5. साहस तथा पराक्रम : -

चंद्रगुप्त बडा साहसी भी है। वह एक बाण से चीते को मारकर कल्याणी की - रक्षा करता है। कार्नेलिया के सम्मान की रक्षा केलिए यूनानी वीर फिलिप्स को द्वद्व - युद्ध के लिए आमंत्रित करता है और उसको पराजित करके अपने पराक्रम की सूचना देता है।

6. अध्यवसायी :-

चंद्रगुप्त अध्यवसायी भी है। भूख और प्यास की उसे चिंता नहीं। चाणक्य के साथ दुर्गम प्रदेशों में पैदल चलने में उसे कष्ट का अनुभव नहीं होता। एक बार एक सैनिक उससे पूछता है - ''शिबिर आज कहाँ होगा देव!'' तब वह उत्तर देता हैं - ''अश्व की पीठ पर सैनिक। कुछ खिला दो और अश्व बदलो। एक क्षण विश्रम नहीं।'' इसी अध्यवसायी वीरता से ही वह आर्त मानवता का कल्याण करने मे सफल हुआ है।

7. धर्म का पालन :-

चंद्रगुप्त चाणक्य को गुरु मानता है और प्रत्येक अवस्था में उसकी आज्ञा का पालन करता है। अपने गुरु की हत्या की चेष्टा में अपने पिता को भी न्यायानुसार दंडित करना चाहता है और अपने माता - पिता के परितोष केलिए आदरणीय गुरु को भी असंतुष्ट कर देता है।

8. कृतज्ञता :-

यवन सेनापति सिल्यूकस ने एक बार मूर्छित अवस्था में व्याघ्र को मारकर उसके प्राण बचाये थे। चंद्रगुप्त इस उपकार को कभी नहीं भूला पाता। वह युद्ध - क्षेत्र में सिल्यूकस का प्रत्युपकार करता है। उसके घायल हो जाने पर भी उसका वध नहीं करता। यह उसकी उदारता एवं कृतज्ञता का परिचायक है।

9. सहृदयता :-

चंद्रगुप्त को बह्‌य - जीवन में विकट संघर्ष करना पडता है। किंतु इससे सुकुमार वृत्तियों का नाश नहीं होता। युद्ध के समय भी वह मालविका से एक गीत गाने का अनुरोध करता है। सहृदयता के कारण उसमें मानसिक दुर्बलताएँ भी दिखायी देती हैं। मालविका को वह अपनी मानसिक थकान का स्पष्ट परिचय देता है - ''विजयों की सीमा है, परंतु अभिलाषाओं की नहीं। मन ऊब सा गया है।''

10. प्रणय :-

कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया - तीनों चंद्रगुप्त से प्रेम करती हैं। चंद्रगुप्त के हृदय में किसी के प्रति विरक्ति आथवा उदासीनता का भाव नहीं है। पोरस - सिंकदर - युद्ध में कल्याणी की प्रणय - चर्चा पर चंद्रगुप्त कहता है - ''राजकुमारी समय नहीं।'' ये बातें अनुपयुक्त वातावरण का संकेत मात्र हैं, तिरस्कार नहीं। मालविका की सरलता पर वह मुग्ध होता है। किंतु अपनी भावुकता पर वह नियंत्रण रखता है। परंतु जो प्यार कल्याणी और मालविका को आत्म - समर्पण के पश्चात् भी प्राप्त न हो सका, वह कार्नेलिया को सुलभ होता है। चंद्रगुप्त और कार्नेलिया का गठ - बंधन समान रूप और गुणों पर आधारित है।

11. उपसहार :-

धीरोदात्त नायक में निर्भीकता, दृढता, विनय - शीलता, आत्मविश्वास आदि जिन गुणों की अपेक्षा होती है, वे चन्द्रगुप्त में है। किन्तु कभी कभी चाणक्य की प्रौढ़ता उसे ढक लेती है। सब चंद्रगुप्त के चरित्र में विद्यमान हैं। इसी कारण वह नाटक का नायक है।

प्र. 2. चाणक्य का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

बाबू जयशंकर प्रसाद के 'चंद्रगुप्त' नाटक का एक प्रमुख पात्र चाणक्य है। शरीर में मेरुदंड के समान नाटक के कथानक में चाणक्य के चरित्र की प्रधानता है। नाटक का सारा ढाँचा उसी पर खडा हुआ है। नाटक में उसके काम शरीर में नसों के समान फैले हुए हैं। सतर्कता, गौरवमय गंभीरता और दूरदर्शिता - चाणक्य के इन गुणों का परिचय हमें नाटक के प्रथम दृश्य में ही मिल जाता है। कुछ विद्‌वानों के अनुसार चाणक्य ही नाटक का नायक है।

2. सतर्कता तथा गंभीरता :-

तक्षशिला की राजीनीति पर दृष्टि रखने की बात - सिंहरण के भुख से सुनते ही चाणक्य सतर्क होकर शिक्षकोचित प्रश्न कर उसकी परीक्षा लेता है - ''जानते हो कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आये हैं?'' आवेश में आकर उद्धत स्वभाववाला आम्भीक तलवार चला देता है। तब चाणक्य गौरवमय गंभीरता से राजकुमारी को आज्ञा देता हैं - ''मैं गुरुकुल का अधिकारी हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि गोधाभिमूत कुमार को लिवा ले जाओ। गुरुकुल में शस्त्रों का प्रयोगं शिक्षा केलिए होता है। द्वंन्द्व युद्ध केलिए नहीं।''

3. दूरदर्शिता :-

चाणक्य देश की स्थिति से पूर्ण जानकारी रखता है। इसलिए वह दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति चंद्रगुप्त को समझाता है - ''मुझे लोगों को समझाकर शस्त्रों का प्रयोग करना पडेगा।.... आगामी दिवसों में जब आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राज्य एक के अनंतर दूसरे विजेता से पद - दलित होंगे।'' मगध अमात्य पूछते हैं - ''तुम तक्षशिला में मगध के गुप्त प्रतिनिधि बनकर जाना चाहते हो या मृत्यु।'' यह सुनकर चाणक्य अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कहता है - ''जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा के लिए नहीं और सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने केलिए तो कदापि नहीं।''

4. ब्राह्मणत्व तथा धीरता :-

ब्राह्मत्व का अहं चाणक्य में बहुत प्रबल है। प्रखर बुद्धि और अनंत शक्ति रखते हुए भी उस बुद्धि और शक्ति का दुरुपयोग नहीं करता। लोक - कल्याण में रत रहना ही उनकी दृष्टि में ब्राह्मणत्व का आदर्श हौ। वह स्वयं कहता है - ''चंद्रगुप्त। मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था।.... बौद्धिक विनोद कर्म था, संतोष धन था।'' ब्राह्मण के इस आदर्श का अंत तक पालन करता है। धीरता चाणक्य का जन्मजात लक्षण है। धीरता का परिचय उसके प्रत्येक कथन से मिलता है। अपमानित होने पर वह नंद की सभा में गरज उठता है - ''खींच ले ब्राह्मण की शिखा। शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते। खींच ले। परंतु यह शिखानंद कुल की काल सर्विणी है, वह तब तक न बंधन में बंधेगी जब तक नंदकुल नि:शेष न होगा।''

चाणक्य साहसी भी है। घोरे - से - घोरे विपत्तियों में भी नहीं घबराता। जिस प्रकार पौधे अंधकार में बढते है, उसी प्रकार उसकी नीतिकाला विपत्ति - काल में लहलहाती है। वह एकाकी होकर भी नंद, पर्वतेश्वर, आम्भीक, राक्षस, सिकंदर और सिल्युकस आदि मगान् शक्तियों से टक्कर लेतो है और अपने बुद्धि - बल से उन्हें पराजित करता है।

5. सिद्धांतप्रद तथा क्षमाशील :-

वह कठोर सिद्धांतप्रद है। वह अपनी प्रतिज्ञा, ''दया किसी से न मागूँगा और अधिकार मिलने पर किसी पर न दिखाउँगा'' का सतत पालन करता है। राष्ट्रीयता उसका सिद्धान्त है। वह चंद्रगुप्त और सिंहरण से कहता है - ''मालव और मगध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।''

वह त्यागी और क्षमाशील भी है। सुवासिनी को अपने प्रतिद्वन्द्वी राक्षस के हाथों में सौंपकर अपने त्याग का परिचय देता है। वह चंद्रगुप्त से कहता है - ''राजा न्याय कर सकता है, परंतु ब्राह्मण क्षमा कर सकता है।'' वह क्रूरता भी अवश्य है। कितु उसकी क्रूरता जन्म - जात न होकर परिस्थिति जन्य है। फिर भी उसमें मनुष्य का हृदय है। बाल्यकाल की सहचरी सुवासिनी की स्मृति एकदम उसके स्मृति - पटल से विलीन न हुई।

6. राजनीतिज्ञ :-

एक कुटिल राजनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का चरित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। उसका नाम कौटिल्य भी है। अपने राजनीतिज्ञ की पहली पहचान यह है कि उसे मनुष्यों और परिस्थितियों की खरी परख होनी चाहिए। चंद्रगुप्त को देखते ही उसने पहचान लिया था कि वह राजा होने के योग्य है। वह देश की परिस्थितियों को समझकर इस निर्णय पर पहुंचता - (1) विदेशियों को निकालना है। (2) चंद्रगुप्त को सम्राट बनाना है। फिर वह योजना बना लेता है।

चाणक्य विशुद्ध परिणामवादी है। परिणाम में भलाई ही उसके कामों की कसौटी है। वह स्वयं कहता है - ''केवल सिद्धि देखताहै, साधन चाहे कैसे ही हों।'' मालविका की जान लेने में वह कोई संकोच नहीं करता। कल्याणी आत्महत्या करती है तो वह एक दम सहज भाव से कहता है - ''चंद्रगुप्त आज तुम निष्कंटक हुए''

7. उपसंहार :-

चाणक्य सैनिक नहीं था, किंतु उसने सेनापतियों को रण - संचालन की नीति सिखायी। वह दरिद्र था, पर उसने सम्राटों पर भी शासन किया। चाणक्य विधाता की एक आश्चर्य सृष्टि कह सकते हैं। उस के चरित्र का अत्यन्त उकृष्ट एपं उज्ज्यल रूप हमारे सामने तब आता है जब वह चंद्रगुप्त को मेघ - मुक्त चंद्र देखकर तथा अपने प्रतिद्वंद्वी राक्षस को मंत्रिपद सौपकर रंगमच से चुपचाप हट जाता है।

अंत में विश्वंभर मानव के शब्दों में हमें भी यह कहता है, ''उसके कर्म - पादप को यद्यपि अपमान की प्रतिकार - भावना और दिव्य यश के अर्जन का खाद्य भी मिला है; पर राष्ट्रप्रेम की रसधारा के सतत चिंतन से क्रूरता के काँटों में रक्षित निस्पृहता का पुण्य और देश - गौरव का फल जो उसने भेंट किया, वह वर्णनातीत है।''

8. निष्कर्ष :-

यह कहना अनुचित न होगा कि चाणक्य नाटक का प्रधान पात्र या नायक कहलाने योग्य है।

प्र. 3. सिंहरण का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

सिंहरण मालवगण - मुख्य का पुत्र है। वह सच्चा वीर है। वह एक स्पष्ट वक्ता है और विनम्रता के साथ निर्भीक होना उसका वंशानुगत लक्षण है। उसमें तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है। वह आर्यावर्त की दशा से दुखी है। नाटक के आरम्भ में ही वह चाणक्य को बताता है कि उत्तरापथ के खण्ड - राज द्वेष से जर्जर है और शीघ्र ही भयानक विस्फोट होनेवाला है।

2. राष्ट्रीय भावना :-

सिंहरण ने चाणक्य द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना को हृदयंगम कर लिया है। वह समस्त आर्यावर्त को अपना मानता है। वह अलका से कहता है - ''मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है, यही क्या, समग्र आर्यावर्त है ....गान्धार आर्यावर्त से भिन्न नहीं है, इसीलिए उनके पतन को मैं अपमान समझता हूँ।'' सिंहरण के लिए जन्मभूमि ही जीवन है।

3. स्वच्छन्द हृदय :-

आम्भीक सिंहरण पर कुचक्र रचने का आरोप लगाता है तो वह धीरयुक्त कहता है - ''यह तो वे ही कर सकते है, जिनके हाथ में कुछ अधिकार हो।.... जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिए बाल्हीक तक....।'' वह आगे आम्भीक की आज्ञा का निरादर करते हुये कहता है - ''गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है। अन्य आज्ञायें, अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं, राजकुमार। ''

अलका सिंहरण के इस गुणं पर मुग्ध होती है। वह अपने भाई आम्भीक को समझाती है – ''भाई इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छंद हृदय में कितना बलवान वेग है। यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है। जाने दो।'' वह अन्यत्र कहती है – 'सुन्दर निश्छल हृदय, तुमसे हँसी करना भी अन्याय है।''

सिंहरण अम्भीक को अपने मार्ग पर ले आना चाहता है। इसे अलका अनधिकार चेष्टा बताती है – ''भाई ने तुम्हारा अपमान किया है, पर वह अकारण न था, जिसका जो मार्ग है, उस पर वह चलेगा। तुमने अनधिकार चेष्टा की थी।'' परंतु सिंहरण उसके मत से सहमत नहीं होता। वह कहता है – ''जीवन – काल में भिन्न – भिन्न मार्गों की परीक्षा करते हुए, जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरों का लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है; परन्तु निष्फल नहीं।''

4. अलका के प्रति प्रेम :-

गुरुकुल में ही सिंहरण अलका के प्रति आकृष्ट होता है। समान लक्ष्य तथा समान गुणों के कारण वे दोनों परस्पर निरंतर समीप आते हैं। अलका सिंहरण को बंदीगृह से छुडाने के लिये पर्वतेश्वर से विवाह करना चाहती है तो सिंहरण कहता है – ''अलका। तुम पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी। अच्छा होता कि इसके पहले ही मैं न रह जाता।'' वह यह भी कहता है – ''कठिन परीक्षा न लो अलका। मैं बडा दुर्बल हूँ। मैं ने जीवन और मरण में तुम्हारा संग न छोडने का प्रण किया है।'' उन दोनों का प्रेम सफल होकर अन्त में उनका विवाह होता है।

5. देशभक्ति :-

सिंहरण आर्थावर्त में यवनों को यथाशक्ति आगे बढने से रोकना चाहता है। उद्‌भंड में सिन्धु पर सेतु बन रहा था। आम्भीक स्वयं उसका निरीक्षण करता था। मालविका ने उस सेतु का एक मानचित्र तैयार कर, अलका को दिया। यवन सैनिक ने उसे छीनने का प्रयत्न किया। अलका ने उसे सिंहरण को दिया। यवन सैनिक ने सिंहरण से उसे छीनना चाहा दोनों में युद्ध हुआ। सिंहरण घायल हुआ। प्रत्याक्रमण के भय में यवन सैनिक भाग गया। घायल होकर भी सिंहरण ने वह मानचित्र पर्वतेश्वर को पहुँचाया।

चाणक्य की सलाह पर सिंहरण और अलका नट और नटी का वेष धारण करके पवेतेश्वर की सेना के पास पहुँचे। उन्होंने पर्वतेश्वर को सूचना दी – ''यवन सेना वितस्ता के पार हो गई है, समीप है महाराज। सचेत हो जाइये।''

सिंहरण ने पर्वतेश्वर के साथ यवनों से युद्ध किया। उसने सिंकदर को घायल किया। यवन सैनिकों से उसे ले जाकर सेवा - शुश्रूषा करने केलिए कहा। मालव सैनिकों ने कहा - ''इस नृशंस ने निरीह जनता का अकारण वध किया है। प्रतिशेध।'' तब सिंहरण ने यह कहकर अपनी महानता का परिचय दिया - ''यह एक प्रतिशोथ है। यह भारत के ऊपर एक ॠ्रण था; पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है।''

6. त्यागशीलता :-

चन्द्रगुप्त सिंहरण को अपना सच्चा मित्र मानता है। आम्भीक सिंहरण पर तलवार चलाता है तो चन्द्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता है। सिंहरण कंधे से कंधा भिडकर चंद्रगुप्त का सहयोग करता रहता है। वह उसके आदेशों का नित्य पालन करता है। चाणक्य की नीति के कारम सिंहरण कुछ समय केलिये चन्द्रगुप्त से दूर हो जाता है। परन्तु फिर ठीक समय पर दोनों मिल जाते हैं। चन्द्रगुप्त सहर्ष कहता है - ''भाई सिंहरण, बडे अवसर पर आये।''

सिंहरण प्राण देने केलिए सदा तत्पर रहता है। वह महाबलाधिकृत पद स्वीकार करते समय चन्द्रगुप्त से कहता है - ''हाँ सम्राट! और समय चाहे मालव न मिले पर प्राण देने का महोत्सव पर्व वे नहीं छोड़ सकते।''

7. आत्माभिमान तथा उपसंहार :-

सिंहरण आत्माभिमानी है। वह वर्तमान को अपना बना लेने में विश्वास करता है। वह अलका से कहता है - ''अतीत के सुखों केलिये सोच क्यों, अनागत भविष्य केलिये भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस बात की?''

सिंहरण गौण पात्र होने पर भी सारे पात्रों की कुंजी बनता है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका, आम्भीक आदि पात्रों पर उसका प्रभाव है। नाटक को प्रचालित करने में सिंहरण एक प्रधान कुंजी है।

प्र. 4. पर्वतेश्वर का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

पर्वतेश्वर पंजाब का राजा था। वह पौरस के नाम से प्रसिद्ध है। वह नाटक के आरम्भ में यवनों को आगे बढ़ने में रोकनेवाले दर्प - भरे वीर के रूप में हमारे सामने आता है। परन्तु बाद में उसका चरित्र गिरा हुआ दिखाई पड़ता है। नंद पर्वतेश्वर से अपनी बेटी कल्याणी से विवाह करने का प्रस्ताव रखता है। पर्वतेश्वर यह कहकर अस्वीकार कर देता है कि वह प्राच्य देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या है। इसमें उसकी अदूरदर्शिता

ही प्रकट होती है। आगे चलकर जय पर्वतेश्वर यवनों के विरुद्ध लडना चाहता है तो नंद कोई सहायता नहीं पहुँचाता।

चाणक्य चंद्रगुप्त को क्षत्रिय बनाकर मगध को क्षत्रिय - शासन में ले आने की बात कहता है तो पर्वतेश्वर उसकी अवहेलना करते हुए कहता है - ''यह कल्पना है।'' चाणक्य अभिशाप देता है - ''आसन्न यवन - युद्ध में तुम पराभूत होगे। यवनों के द्वारा समग्र आर्यावर्त पादाक्रांत होगा। उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे।'' पर्वतेश्वर चणक्य से कहता है - ''केवल अभिशाप अस्त्र लेकर ही तो ब्राह्मण लडते हैं। मैं इससे नहीं डरता। परन्तु, डरानेवाले ब्राह्मण। तुम मेरी सीमा के बाहर हो जाओ।''

2. दुर्बलताएँ :-

पर्वतेश्वर में कुछ दुर्बलताएँ भी हैं। वह अलका के पीछे पागल बन जाता है। वह स्वयं कहता है - ''अलका, मैं पागल होता जा रहा हूँ। यह तुमने क्या किया?'' अलका सिंहरण को बन्दी बनाने का कारण पूछती है तो पर्वतेश्वर कहता है - ''क्यों कि अलका के दो प्रेमी नहीं जी सकते।'' इससे स्पष्ट है कि पर्वतेश्वर अलका से प्रेम करता है। इसी कारण अलका की प्रार्थना पर वह सिंहरण को बंधन - मुक्त करता है, मालव देश पर यवन - आक्रमण होने पर यवनों की सहायता करने केलिए अपनी सेना को न भेजने का वादा करता है। अलका को स्वतंत्र बनाता है।

परन्तु पर्वतेश्वर अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं कर सकता। सिकंदर सहायता माँगता है तो पर्वतेश्वर दुविधा में पड़ जाता है। एक ओर सिकंदर का भय और दूसरी ओर प्रतिज्ञा - पालन। दोनों को संतुष्ट करने के उद्देश्य से वह कहता है - ''एक हजार अश्वारोहियों को साथ लेकर वहाँ पहुँच जाऊँ। फिर कोई बहान ढूँढ निकालूँगा।'' इससे वह अलका की दृष्टि में गिर जाता है।

3. वीरता :-

पर्वतेश्वर युद्ध - कौशल है। युद्ध में वह स्वयं गज - संचालन करता है। वह यवनों से बडे साहस और वीरता के साथ युद्ध करता है। वह कहता है - ''सेनापति। युद्ध में जय.या मृत्यु - दोनों में से एक होना चाहिये।'' उसे अपनी शक्तिमें विश्वास है। वह कहता है - ''सेनापति। उन कायरों को रोको। उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय पराजय की चिंता नहीं, उन्हें बतला देना चाहिये कि लडना जानते है।''

सिकंदर पर्वतेश्वर की वीरता से मुग्ध होकर उससे प्रश्न करता है – ''पर्वतेश्वर! अब मैं तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ?'' तब पर्वतेश्वर उत्तर देता है – ''जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है सिकंदर।'' इन शब्दों में उसकी महानता का परिचय मिलता है।

4. परिवर्तन :-

सिकंदर पर्वतेश्वर से मैत्री करना चाहता तो पर्वतेश्वर भी स्वीकृति देना चाहता है। पुरुष – वेष में आयी हुई कल्याणी मगध सेना की सहायता से युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित करती है। पर्वतेश्वर युद्ध करने केलिये तैयार न होता। तब कल्याणी कहती है – ''जाती हूँ क्षत्रिय पर्वतेश्वर। तुम्हारे पतन में रक्षा न कर सकी, बडी निराशा हुई।'' अपमानित पर्वतेश्वर कहता है – ''ओह पराजय। निकृष्ट पराजय''।

सिंहरण और अलका वर – वधू बनते हैं तो पर्वतेश्वर तिलमिला जाता है। वह सोचता है – ''मरूँ या मार डालूँ। इस समय सिंहरण पर हाथ उठाना असफलता के पैरों तले गिरना है। फिर जीकर क्या करूँ?'' ऐसा सोचकर छुरा निकालकर वह आत्महत्या करना चाहता है। चाणक्य उसे रोकता है और सलाह देता है – ''जिन यवनों ने तुमको लांछित और अपमानित किया है, उनसे प्रतिशोध लो।... सिंहरण को अपना भाई समझो और अलका को बहन। कन्या प्रदान करो।'' पर्वतेश्वर स्वीकृति देता है और उसका अनुचर बनता है। इतना ही नहीं, वह यवनों से लडने केलिये अपनी सेना सिंहरण को और कोष चाणक्य को सौंप देता है।

5. उपसंहार :-

मगध में मद्यप की दशा में पर्वतेश्वर कल्याणी को देखकर उसकी ओर आकृष्ट होता है। उससे प्रेम – याचना करता है। वह भागती है, परंतु पर्वतेश्वर उसे पकड लेता है। कल्याणी उसी का छुरा निकालकर उसका वध करती है। इस प्रकार वहअपने अपमान का प्रतिशोध लेती है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में भी लेखक ने विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर की मुत्यु दिखाकर उसकी कामुकता को प्रकट किया।

प्र. 5. आम्बीक का चरित्र – चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

वह रंगमच पर प्रथमत: देशद्रोही के रूप में आता है और आगे चल कर देश – द्रोही से देश – प्रेमी बनता है। नाटक के प्रथम दृश्य में ही एक उद्धत स्वभाव वाले युवक के रूप में हमारे सामने आता है। उसके पिता गाँधार नरेश स्वार्थ – वश आर्यावर्त पर आक्रमण करने में यवनों की सहायता करने का निश्चय करता है। यवनों के आगमन को सुगम बनाने केलिये वह सिंधु – तट पर सेतु बनाने लगता। आम्भीक स्वयं उसका पर्यवेक्षण करता है।

2. संदेश :-

आम्भीक को संदेह होता है कि चाणक्य छात्रों को ''कुचक्र सिखा रहा है। इसलिए वह चाणक्य से क्रोध से पूछता है – ''बोलो ब्राह्मण मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरुद्ध कुचक्रों की सृजना।'' उसमें राजकुमार होने का दर्प है। सिंहरण आर्यावर्त पर आये हुए खतरे का पूरा विवरण देने से इनकार कर देता है तो वह कहता है – ''मेरी आज्ञा है।'' परंतु सिंहरण उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता। इसके विपरीत आम्भीक की निंदा करता है। आम्भीक कहता है – ''तुम बन्दी हो।'' सिंहरण बन्दी बनने केलिए तौयार नहीं होता। इस पर आम्भीक तलबार खींचता है। चन्द्रगुप्त उसे रोक देता है। आम्भीक की तलवार छूट जाती है। चन्द्रगुप्त उनके बीच युद्ध को रोककर वहाँ से चले जाने को कहता है।

3. देशद्रोह तथा कायरता :-

आम्भीक की बहन अलका देश – प्रेमी है। आम्भीक को अपनी बहन पर कोई अनुराग तथा प्रेम नहीं। यवन सैनिक अलका को बन्दी बनाने लगते हैं तो आम्भीक चुपचाप रह जाता है। इतना ही नहीं, अपने पिता के सामने ही वह अलका की हत्या करने की धमकी देता है – ''और तब अलका, मैं अपने हाथों से तुम्हारी हत्या करूँगा।'' पर्वतेश्वर आम्भीक को कायर मानता है। वह कहता है – ''ऐसे कायर से मैं अपने लोकविश्रृत कुल की कुमारी का व्याह न करूँगा।''

चन्द्रगुत की दृष्टि में वह अनार्य, देश – द्रोही और लोभी है। वह ग्रीक – शिबिर में कहता है – ''स्वच्छ हृदय भीरु कायरों की सी बंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य। देश द्रोही कायर। चन्द्रगुप्त के लालच से अथवा घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।''

4. परिवर्तन :-

अन्त में आम्भीक में परिवर्तन होता है। वह अपने पिता से अपनी गलतियों को मानता है और कहता है – ''मैं लौट तो आता, परन्तु यवन सैनिक छाती पर खडे हैं।   पुल बन चुका है।   गांधार का नाश नहीं चाहता। '' और अब वह देश – प्रेमी बन जाता है। वह चाणक्य से भी देश – प्रेमी सैनिक होने की इच्छा प्रकट करता है – ''व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा.... ब्राह्मण! मैं केवल एक बार यवनों के सम्मुख अपना कलंक घोने का अवसर चाहता हूँ। रण – क्षेत्र में एक सैनिक होना चाहता हूँ और कुछ नहीं।''

आम्भीक अपनी बहन की देश - भक्ति पर मुग्ध होकर कहता है - ''बहन! अलका! तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मैं भूल करता था बहन! तक्षशिला केलिए अलका पर्याप्त है, आम्भीक की आवश्यकता न थी।'' वह आगे अपने कुकर्मों को मानते हुए कहता है - ''मैं देश - द्रोही हूँ, नीच हूँ, अधम हूँ। तू ने गांधार के राजवंश का मुख उज्जवल किया है। राज्यासन के योग्य तू ही है।''

5. उपसंहार :-

चाणक्य के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आम्भीक में देश - भक्ति जागृत होती है। मगध - सेना के साथ सिल्यूकस से युद्ध भी करता है और सिल्यूकस को घायल करके वह स्वयं मारा जाता है। मरने के पहले वह सिल्यूकस के कहता है - ''हाँ। सिल्यूकस! आम्भीक सदा प्रवंचक रहा, परन्तु यह प्रवंचना कुछ महत्व रखती है।'' पहले उसने देश के अहित केलिये प्रवंचना की तो अन्तं में देश के हित में की है। इस परिवर्तन आम्भीक के चरित्र पर सहानुभूति होती है।

प्र. 6. राक्षस का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

जयशंकर प्रसाद ने राक्षस के पात्र को चन्द्रगुप्त के समकक्ष नहीं चित्रित किया है। उन्होंने उसको एक साधारण पात्र के रूप में वर्णित किया है। इस कारण राक्षस की व्यक्तित्व नाटकों में अभरकर नहीं आया है। वह सुवासिनी के पीछे पड़नेवाले मद्यप के रूप में हमारे सामने आता है।

राक्षस नंद का मंत्री है। वह अमात्य वक्रनास के भ्रातुष्पुत्र है। उसके पूर्वज वैदिक धर्मावलंबी थे। सुवासिनी बौद्ध है। इसलिए राक्षस भी बौद्ध बनता है। परन्तु पूर्णत: वह बौद्ध नहीं बनता। वह बौद्ध धर्म की दर्शनिक सीमा तक ही समर्थक है। वह सुवासिनी के कारण न भिक्षु ही बनता है और न किसी से व्याह ही करता है। उसे बौद्ध धर्म के इस सूत्र में पूर्ण विश्वास है कि संसार दुखमय है। इसलिए वह सुवासिनी को पाकर अपने क्षणिक जीवन को सुखी बनाना चाहता है। वह स्वयं सुवासिनी से कहता है - ''मैं इस क्षणिक जीवन की घडियों को सुखी बनाने का पक्षपाती हूँ। और तुम जानती हो कि मैं ने व्याह नहीं किया, परन्तु भिक्षु भी न बन सका।''

2. विलासमय जीवन :-

एक दिन राक्षस मगध - सम्राट के विशाल - कानन में सुवासिनी के साथ विलासमय जीलन बिताते दिखायी पडता है। वह मदिरा पान करता है और सुवासिनी से और एक पात्र देने केलिये कहता है। नागरिकों

के अनुरोध पर सुवासिनी अभिनय के साथ गाने के लिये तैयार होती है। पर एक शर्त लगाती है कि राक्षस कच का अभिनय करे। नंद राक्षस से गाने केलिये कहताहै तो वह जवाब देता है – ''उसका मूल्य होगा एक पात्र कदंब।'' ये शब्द राक्षस जैसे मंत्री के मुँह से शोभा नहीं पाते।'' सुवासिनी के कहने पर राक्षस राजचक्र में बौद्धधर्म का समर्थन करने केलिये तैयार होता है। तब सुवासिनी समर्पित होकर कहती है – ''फिर लो मैं तुम्हारी ही हूँ।''

सुवासिनी के प्रति अनुरक्त नंद उसे अभिनयशाला की रानी बनाताहै। राक्षस सुवासिनी को हस्तगत तो करना चाहता है। परन्तु राज –कोप का डर सताता है। वह सोचता है – ''सुवासिनी। कुसुमपुर का स्वर्गी कुसुम मैं हस्तगत कर लूँ? नहीं, राजकोप होगा। परन्तु जीवन वृथा है। मेरी विद्या, मेरा परिष्कृत विचार सब व्यर्थ है। सुवासिनी एक लालसा है, एक प्यास है। वह अमृत है, उसे पाने केलिये मैं सौ बार मरूँगा।'' इससे स्पष्ट होता है कि राक्षस सुवासिनी के विना अपने जीवन को व्यर्थ समझता है। इस दुर्बलता के कारण ही उसका चरित्र नाटक में उभर नहीं सका।

3. राजनीति :-

पर्वतेश्वर कल्याणी से विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। तब राक्षस कहता है – ''मैं इसका फल दूँगा। मगध – जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान करके कोई यों कहीं नहीं बच जायगा। '' चाणक्य नंद की शासन – नीति की कटु आलोचना करता है तो राक्षस यह कहकर उसका अपमान करता है – ''परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य – नीति समझ लेने का अधिकारी नहीं हो जाता।''

राक्षस बंदीगृह में रहनेवाले चाणक्य से पूछता है – ''तुम तक्षशिला में मगथ के गुप्त प्रतिनिधि बनकर जाना चाहते हो या मृत्यु चाहते हो। चाणक्य नहीं मानता है। राक्षस उसे अंधकूप में रखने की धमकी देता है। इतने में चंद्रगुप्त आकर चाणक्य को बंदीखाने से ले जाता है। राक्षस चाणक्य को देखना भी नहीं चाहता। पर उसकी सलाहें सुनने के लिये विवश होता है। वह स्वयं कल्याणी से कहता है – मैं इसकी मुँह भी नहीं देखना चाहता। पर इसकी बातें मानने केलिए विवश हो रहा हूँ।''

चाणक्य राक्षस से कहता है – ''सिकंदर को स्थल – मार्ग से मालवों पर आक्रमण करना पड़ा। इसलिए वह मालवों के चंगुल में फँस गया है। अब तुम अपनी संपूर्ण सेना लेकर विपाशा के तट की रक्षा करो।'' राक्षस स्वीकार करता है। इससे स्पष्ट हैकि राक्षस अमात्य होकर भी चाणक्य के कहे अनुसार चलता है। राक्षस में अमात्य के लिए आवश्यक बुद्धि – कौशल, चतुरता, कुटिलता आदि गुण नहीं है। इसलिये वह चाणक्य के कुचक्र में फँस जाता है। चाणक्य चर के द्वारा समाचार भेजता है कि नंद ने सुवासिनी को कारागार में रखा है

और उसे बंदी बनानेवाला है। इसके बाद चाणक्य के सैनिक ही उसे बंदी बनाने लगते है और उसके सैनिक ही उसे छुडाते हैं। इससे चाणक्य को दो लाभ प्रप्त होते है -

1. राक्षस द्वारा ही नंद की निंदा कराता है। और
2. राक्षस द्वारा ही अपनी प्रशंसा पाता है।

4. उपसंहार :-

राक्षस का चरित्र गिर जाता है। चाणक्य और एक बार राक्षस के जीवन से खेलता है। वह राक्षस से मुद्रा लेकर राक्षस के नाम पर सुवासिनी को एक पत्र लिखता है और प्रबंध करता है कि वह पत्र नंद को मिले। पत्र में इस प्रकार लिखा रहता है - ''सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो। मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूँ। नन्द से फिर समझ लिया जायगा।'' इस पत्र के कारण नंद राक्षस को बन्दी बनाता है। चाणक्य की यह कारवाई मालूम होने पर राक्षस कहता है - ''मैं चाणक्य के हाथों की कठपुतली बनकर मगध का नाश नहीं करा सकता।''

चन्द्रगुप्त राक्षस को बन्धन - मुक्त करता है। राक्षस चाणक्य से प्रतिशोध लेना चाहता है और चंद्रगुप्त को मार डालने का पड्यंत्र रचता है। परन्तु असफल होता है। मौर्य और उसकी पत्नी चाणक्य की नीति से असंतुष्ट होकर चले जाते हैं। इसमें भी राक्षस का हाथ है। अन्त में लाचार होकर वह यवनों से हाथ मिलाता है। कार्नोलिया उसे कृतघ्न कहती है। यहाँ आकर राक्षस का पतन चरम सीमा पर पहुँचता है। सिल्यूकस की पराजय होने पर वह चन्द्रगुप्त से क्षमा याचना करता है। चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य नियुक्त करता है और वह राक्षस से सुवासिनी को सुखी रखने के लिए कहता है। राक्षस और सुवासिनी चाणक्य को प्रणाम करते हैं।

प्र. 7. अलका का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

अलका चन्द्रगुप्त नाटक में महत्वपूर्ण स्त्री - पात्र है। वह प्रसाद की काल्पनिक पात्र है। उसके द्वारा प्रसाद जी ने अपने आदर्शों को व्यक्त किया है। वह गांधार नरेश की पुत्री है और आम्भीक की बहन है। लोभ - वश आम्भीक यवनों का स्वागत करता है। इससे देश - प्रेमी अलका दुखी हो, राज्य के सुखों को त्याग कर चल पडती है। इसका कारण बताते हुये वह दाण्ड्यायन से कहती है - ''ऋषे यवनों के हाथ बेचकर उनके दान से जीने की शक्ति मुझ में नहीं है।'' उसकी दृष्टि में पराधीनता से बढकर और कोई विडम्बना नहीं है।

2. सिंहरण के प्रति आकृष्ट :-

प्रथम दृष्टि में ही अलका सिंहरण के गुणों पर मुग्ध होती है। वह अपने भाई से सिंहरण के बारे में बताती है - ''भाई! इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छद हृदय में कितना वेग है।'' अलका सिंहरण की निर्भीकता, देश - प्रेम, वीरता आदि गुणों से आकृष्ट हती है। वह कहती है।''जिस देश में ऐसे वीर युवक हो, उसका पतन असम्भव है। मालव वीर! तुम्हारे मनोबल में स्वतंत्रता है। तुम्हारी दृढ भुजाओं में आर्यावर्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित रखना चाहिये।''

3. देशप्रेम :-

यवनों के आगमन को सुगम बनाने केलिये सिंधु - तट पर सेतु का निर्माण होने लगता है। आम्भीक उसका निरीक्षण करता है। मालविका उसका मानचित्र बनाकर अलका को देती है। एक यवन सैनिक उसे उससे छीनने का प्रयत्न करता है। तब अलका उसे वहाँ आये हुये सिंहरण को दे दे ती है। सिंहरण उसे पर्वतेश्वर को पहुँचाता है।

अलका भाई आम्भीक के कलंक को निवृत्त करना चाहती है। परन्तु आम्भीक उसे बंदी बनाता है। वह अपने पिता से शिकायत करती है - ''महाराज! जिस उन्नति की आशा से आम्भीक ने यह नीच कर्म किया है, उसका पहला फल यह है कि आज मैं बन्दिनी हूँ, सम्भव है कल आप होंगे और परसों गांधार की जनता वेगार करेगी। उनका मुखिया होगा आपका वंश - उज्जवलकारी आम्भीक। अलका यथाशक्ति अपने भाई को देश - द्रोही बनने से रोकना चाहती है। वह स्वयं कहती है - ''आम्भीक को मैं शक्ति - भर पतन से रोकूँगी।''

अलका में देश - प्रेम कूट - कूट कर भरा हुआ है। वह सिल्युकस से कहती है - ''मेरा देश है, मेरे पहाड हैं, मेरी नदियाँ है, और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक - एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक - एक क्षुद्र अंश भी उन्हीं परमाणुओं के बने है''

4. व्यवहार कुशला :-

अलका व्यवहार - कुशल है। कानन - पथ में सिल्युकस से मुलाकात होने पर वह उसका पिंड छुडाने के लिये कहती है - ''देखे, वह सिंह आ रहा है।'' सिल्युकस उधर देखने लगता है तो वह दूसरी ओर निकल जाती है। वह सिल्यूकस को मूर्ख बनाकर निकल भागती है। इसी प्रकार वह सिंहरण को बंदी - गृह से छुडाने केलिये एक उपाय रचती है। वह पर्वतेश्वर से प्रेम का अभिनय करती है। वह पर्वतेश्वर से विवाह करने की बात करती है। परन्तु दो शर्तें लगाती है - (1) सिंहरण को अपने देश की रक्षा केलिये मुक्त किया जाय और

(2) सिकंदर के भारत में रहने तक वह स्वतंत्र रहे। पर्वतेश्वर उन शर्तों को मान लेता हैं और सिंहरण को बंधन - मुक्त करता है। यहाँ भी अलका की व्यवहार - कुशलता प्रकट होती है।

अलका चाणक्य की आज्ञा का सदा पालन करती रहती है। वह उनकी आज्ञा के अनुसार सिंहरण के साथ नटों के वेष में जाकर पर्वतेश्वर की सेना में मिल जाती है। चाणक्य एक छद्म-पत्र मालविका को देकर उसे नंद को देने केलिए कहता है और अलका को मालविका के साथ जाने को कहता है। अलका उसकी आज्ञा का पालन करती है।

5. जागरण :-

अलका स्वतंत्रता के युद्ध में सबको समान मानती है। वह कहती है - ''स्वतंत्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं।'' उसका विचार है कि राज्य किसी का नहीं है, सुशासन का है। वह निडर है। मानचित्र को लेते समय यवन सैनिक उसे बंदी बनाने की धमकी देता है तो अलका उससे पूछती है - ''पहले तुम्हें बताना होगा कि तुम यहाँ किस अधिकार से यह अत्याचार किया चाहते हो?'' वह अपने पिता से भी कहती है - ''गांधार में विद्रोह मचाऊँगी''

अलका लोगों में देश - प्रेम को जगाने केलिये कहती है - ''वीर नागरिकों। देश पद - दलित हो रहा है और तुम विलासिता में फँस रहे हो। क्या यह माततृभूमि के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य है ?'' उस के देश - प्रेम पर आम्भीक मुग्ध होता है। उसमें बडा परिवर्तन होता है। एक दिन अपनी बहन अलका की हत्या करने के लिये जो आम्भीक तैयार हुआ था, वही कहता है - ''बह्न, तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मैं भूल करता था बहन। तक्षशिला के लिये अलका पर्याप्त है, आम्भीक की आवश्यकता न थी। मैं देशद्रोही हूँ, नीच हूँ। तू ने तो गाँधार के राजवंश का मुख उज्ज्यल किया है। राजासन के योग्य तू ही है।'' आम्भीक का परिवर्तन अलका के चरित्र की सार्थकता है।

6. उपसंहार :-

अलका बीर वनिता है। मालव - दुर्ग की रक्षा में वह सिंहरण की सहायता करती है। यवन - सैनिक दुर्ग पर चढने का प्रयत्न करते है तो वह तीर चलाकर दो सौनिकों को मार डालती है। इतना ही नहीं, वह घायलों की सेवा में संलग्न रहती है। अन्त में अलका सिंहरण से विवाह करके देश - सेवा में लग जाती है।

प्र. 8. सुवासिनी का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

'अजातशत्रु' में जो चरित्र मागंधी में बोलता है, जो चरित्र 'स्कंदगुप्त' में विजया के रूप में अवतरित होता है, वही चरित्र परिवर्तित परिस्थिति में 'चन्द्रगुप्त' में आकर सुवासिनी का रूप धारण करता है। सुवासिनी, शकटार की पुत्री सुवासिनी, नंद की नर्तकी सुवासिनी, चाणक्य की पूर्व परिचिता एवं अनुराग रंजिता तथा राक्षस की प्रणयनी सुवासिनी - सभी रूपों में सुवासिनी का एक रूप परिस्थिति के सतरंगी आइने के समान है। परिस्थितियों के कारण अपने चरित्र को कितनी ही उलझनों से भर देने पर भी वह मूलत: एक ही है।

चाणक्य की सहायता करने के कारण शकटार को उसके सात पुत्रों के साथ अंधकूप की सजा मिली थी। उसकी एक मात्र पुत्री सुवासिनी बाहर रह गयी थी। अन्धकूप में शकटार के सातों बच्चों का देहावसान, अन्नपान बिना हो गया। शकटर ने उस अंधकूप में भूख से तडपते हुए अपने सात बच्चों की जानें जाती हुई देखी थी। इस विशाल संसार में सुवासिनी अकेली रह गयी थी। उसका कोई अवलम्ब नहीं रहा। इस कारण वह अपने महल को खंडहर होने से बचा नहीं सकी। ऐसी परिस्थिति में उसने नुत्य एवं संगीत - कला को अपने जीवन का आधार बना लिया। इस प्रकार नंद के क्रोध के परिणाम स्वरूप सुवासिनी को नर्तकी बनना पडा।

2. विलास तथा अभिनय :-

रंगमच पर सुवासिनी सर्वप्रथम नंद के विलास - कानन की सुंदरियों की रानी के रूप में आती है। परंतु ह्दय पक्ष में वह राक्षस की प्रोयसी है। जब राक्षस मंत्री बनताहै तो सुवासिनी नंद के अभिनय - शाला की रानी बनायी जाती है। नंद स्वयं घोषित करताहै - ''और सुवासिनी, तुम मेरी अभिनयशाला की रानी।'' वह मगध की सर्वश्रेष्ठ संदरी थी। उसमें कुसुम की भाँति कोमल थी। नारीगत सहज आकर्षण था। वह राक्षस की चरमसीमा थी जिसे चूमने भर में जीवन के सभी उल्लास और अभिलाषाएँ यथार्थ में परिवर्तित हो जाने को थी।

सुवासिनी एक ओर नंद के अभिनय - शाला की रानी है और दूसरी ओर राक्षस की प्रणयिनी। अभिनय - शाला की रानी होने के कारण नंद सुवासिनी को 'प्रणोश्वरी' का सम्बोधन भी कर देता है। वह कभी - कभी दुर्भावना से सुवासिनी की ओर बढ़ जाता है। तब सुवासिनी स्पष्ट करती है कि वह आगे न बढ़े क्यों कि वह नंद के यहाँ आर्य राक्षस की धरोहर मात्र है। वह राक्षस की प्रणयिनी है। वह किसी भी प्रकार सम्राट की भोग्या नहीं बन सकती। नंद भी राक्षस के सामने स्वीकार करता है कि सुवासिनी राक्षस की अनुरक्त ा। वह अपनी दुर्भावनाओं के कारण लज्जित है। इस प्रकार यहाँ सुवासिनी के दो रूपों का एकाकार हो जाता है। यह सुवासिनी के चरित्र की विजय है।

सुवासिनी के चरित्र में और एक उलझन है। वह है चाणक्य की बाल्य सखी होना। सुवासिनी और चाणक्य के बीच बचपन का परिचय और आकर्षण रहा है। उसका संस्कार भली प्रकार सुवासिनी के मन पर बना रहता है।

3. कर्तव्यध्यान :-

कर्तव्यपालन करने पर सुवासिनी गर्व करती है। अपनी मर्यादा एव स्त्रीत्व की रक्षा। वह सदा अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखतीं है।राक्षस प्रणय - निवेदन करता है तो सुवासिनी कहती है - ''मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नहीं करती। किंतु अब इसका प्रस्ताव पिताजी से करो। तुम मेरे रूप और गुण के ग्रहक हो और सच्चे ग्राहक हो।'' यहाँ प्रणय पर कर्त्तव्य की विजय होती है।

राक्षस सुवासिनी को चाणक्य के बाल्य - परिचय की याद दिलाता है तो सुवासिनी कहती है - ''ठहरो अमात्य! मैं चाणक्य को एक प्रकार से विस्मृत हो गयी थी। तुम इस सोई हुई भ्रमरी का न जगाओ।'' इससे स्पष्ट होता है कि सुवासिनी का बाल्य - परिचय उसे चाणक्य की ओर झुका सकता है, परतु सुवासिनी उसे सोई हुई भ्रमरी कहकर टाल देती है।

5. उपसंहार :-

सुवासिनी सौन्दर्यमयी नारी है। उसमें मानवीय दुर्बलताएँ हैं। वह महत्वाकांक्षिणी है। एक बार वह चाणक्य की स्मृति संजोती है, फिर राक्षस के बाहुपाशों में मुक्तहृदय सोना चाहती है। दूसरी बार पुनः चाणक्य की ओर घूमती है। राक्षस से परिणय - संबध की घोषणा में समाप्ति तथा उसके जीवन का अंत होता है।

प्र.9. मालविका का चरित्र - चित्रण कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

मालविका 'चंद्रगुप्त' नाटक में एक गौण पात्र है। फिर भी प्रसाद जी ने उसका अत्यन्त संवेदनीय और आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया है। वह सिन्धु देश की कुमारी है। सिन्धु में उसका कोई आत्मीय था, इस बात का वह कही कोई उल्लेख नहीं करती। वह प्रकृति से भ्रमणशील है। उसकी इच्छा हुई कि वह और देशों तो भी देखे। भ्रमण करती हुई गांधार देश जा पहँचती है। पहले - पहल मालविका को सिन्धु - नदी के तट पर अलका के साथ धूमते - फिरते दिखाई देती है। तभी हमें ज्ञाता होता है कि मालविका ने भी अलका की तरह देश - सेवा का व्रत ले रखा है।

2. कौशल :-

मालविका सिन्धु पर बननेवाले सेतु का मानचित्र खींचने का प्रयत्न करती है। यवन सैनिक उस मानचित्र को छीनना चाहता है। तब मालविका और अलका जिस कौशल के साथ उस स्थिति का सामना करती है, उस से हमारे मन में उसके प्रति ऊँची धारणा बन जाती है।

3. चन्द्रगुप्त से आकृष्ट :-

मालव के उद्यान में चंद्रगुप्त और मालविका एक साथ विचरते रहते हैं और वार्तालाप करते रहते है। दोनों के हृदयों में एक दूसरे केप्रति स्नेह का अंकुर उत्पन्न हो जाता है। परंतु आगे के दृश्यों में इस समरस स्नेह का विकास नहीं होता। मालविका क्रमश: चंद्रगुप्त की गुप्त प्रेमका - सी बन जाती है और वह इतने से ही संतृप्त होती है।

4. असाधारण मनोभावना :-

दो दृश्यों में मालविका की शांतिप्रियता और हिंसा के प्रति घृणा का भाव व्यक्त होता है। एक अवसर पर मालविका चंद्रगुप्त से कहती है - ''मैं सिन्धु देश की रहनेवाली हूँ आर्य! वहाँ युद्ध विग्रह नहीं है, न्यायालयों की आवश्यकता नही है।'' दूसरे अवसर पर वह अलका से कहती है - ''मैं डरती हूँ, घृणा करती हूँ। रक्त की प्यासी छुरी अलग करो अलका। मैं ने सेवा का व्रत लिया है।'' इन दोनों दृश्यों में न केवल मालविका के चरित्र को विशिष्टता दी गयी है, उसकी असाधारण मनोभावना का सुंदर निरूपण भी किया गया है।

5. विश्वसनीयता :-

तीसरे अंक में मालविका मालव युद्ध के बाद सिकंदर की विजय के अवसर पर एक प्रधान पात्री के रूप में चित्रित की जाती है। मालविका चंद्रगुप्त को एक पत्र पहुँचाती है जिसमें यवन सेनापति फिलिप्स के द्वारा चंद्रगुप्त से द्वन्द्व - युद्ध का निमंत्रण रहता है। इसी प्रकार चाणक्य के द्वारा भेजा हुआ कृत्रिम पत्र नंद के राजमंदिर तक पहुँचाने का दयित्व भी लेती है। अन्त में विश्वस्त गुप्तचर का कार्य उसे सौपा जाता है। इसे भी वह दक्षता के साथ संपन्न करती है।

6. बलिदान :-

अंतिम अंक में चंद्रगुप्त और मालविका प्रेमी और प्रेमिका के रूप में मिलते हैं। परंतु उसी अवसर पर मालविका यह गीत गाती है - ''मधुप कब एक कली का है।'' इससे मालविका के अन्तस्थल के विक्षोभ का

पता लगता है, फिर भी वह सन्तोष करती है। कुछ लोगों का कहना है कि नाटककार ने यहाँ भी उसके प्रति अन्याय किया है। वे यह प्रश्न करते हैं कि जब अलका सिंहरण से विवाह कर लेती है तो उसकी सखी मालविका का इस प्रकार जीवन - भर भटकते रहना कहाँ तक समीचीन है? इसके समाधान के रूप में यह कहा जा सकता ही नहीं, चाणक्य तथा चंद्रगुप्त के सामने भारतीय साम्राज्य के निरापद करने की समस्या थी। इस समस्या की पूर्ति कार्नेलिया और चंद्रगुप्त के परिणय से हो सकती है। इसी कारण नाटककार ने मालविका का चंद्रगुप्त से परिणय होने नहीं दिया।

मालविका अपने एकांतिक प्रेमी चंद्रगुप्त के लिए को बलिदान करने पर उसका संपूर्ण व्यक्तित्व चरम उत्कर्ष के साथ प्रकट होता है। वह चाणक्य की आज्ञा पाकर चंद्रगुप्त के शयन का अन्यत्र प्रबंध करती है और सोचती है - ''जाओ प्रियतम। सुखी जीवन बिताने केलिए और मैं रहती हूँ जीवन का अंत करने केलिए। जीवन एक प्रश्न है और मृत्यु उसका अटल उत्तर है।.... ओह। आज प्राणों में कितनी मादकता है। मैं....कहाँ हूँ? स्मृति, तू मेरी तरह सो जा। अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन बन जा।'' बलिदान की शय्या पर गाया हुआ वह चरम गीत पाठकों के हृदय में वेदना, कसक और मादकता एक साथ उद्वेलित करता है।

7. उपसंहार :-

सिंहरण से मालविका की हत्या का संवाद सुनकर चंद्रगुप्त केवल 'आह मालविका' कहकर ही रह जाता है। परंतु वह मालविका के नहीं प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि प्रकट करता है - ''पिता गये, माता गई, गुरुदेव गए, कंधे .. से कंधा भिडाकर प्राण देनेवाला चिर सहतर सिंहरण गया, तो भी चंद्रगुप्त को रहना पडेगा और रहेगा। परन्तु मालविका, आह। वह स्वर्गीय कुसुम।'' इन वाक्यों में चंद्रगुप्त के प्रति नाटककार प्रसाद की सद्भावना व्यक्त होती है।

प्र.10. 'चंद्रगुप्त' नाटक की ऐतिहासिकता का विवेचन कीजिये।

1. प्रस्तावना :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रसाद की नाट्य - कला को महत्वपूर्ण उपलब्धि। तत्व उनकी ऐतिहासिकता है। उनके गंभीर अध्ययन और मनन का परिचय हमें उनके ऐतिहासिक अन्वेषणों से प्राप्त है। उनका ऐतिहासिक ज्ञान नाटकों की लम्बी - चौड़ी भूमिका तक ही सीमित नहीं हैं। उन्होंने अपनी खोजों के तर्क - संगत प्रमाण भी दिये ह॥ अतीत की टूटी लडियों को एकत्र करने का उन्होंने जो कार्य किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी और भाव - भंगिमा से इतिहास के रूख - सूखे पृष्ठों में जीवन का रस डाल दिया है।

प्रसाद के समस्त ऐतिहसिक नाटकों में संभवत: 'चंद्रगुप्त' ही एक ऐसा नाटक है जिसके प्राय: सभी प्रमुख पुरुष पात्र इतिहास सम्मत हैं। स्त्री पात्रों में कल्याणी और कार्नेलिया के नाम भी ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलते है। इसी तरह इस नाटक की प्रमुख घटनायें इतिहास - सम्मत ही हैं। प्रसाद ने कुछ ऐतिहासिक उद्देश्यों से अनुप्राणित होकर 'चंद्रगुप्त' नाटक की रचना की है।

2. भारत यवनों से कभी पराजित नहीं हुआ :-

पाश्चात्य इतिहासकारों ने इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यूनानी सेना का सामना भारतीय सेना न कर सकी थी। पंचनद - प्रदेश की विजय से उत्साहित होकर सिकन्दर समस्त भारत को पददलित करना चाहता था। परंतु अपने विस्तृत साम्राज्य में किसी आंतरिक विद्रोह के फूट पडने की सूचना पाकर उन्होंने अपने विचार को स्थगित कर दिया था। वे स्थल - पथ से अपनी सेना को भेजकर स्वयं जल - मार्ग से लौट गये। परन्तु प्रसाद ने अपर्युक्त ऐतिहासिक विश्वासों का खंडन किया। उन्होंने चंद्रगुप्त नाटक में यह दिखाया है - (1) यूनानियों को दो बार भारत में आगे बढने से रोका गाथा। (2) यूनानियों को देश से निकालकर स्वतंत्र भारत की कीर्ति की रक्षा में चंद्रगुप्त प्रयत्नशील रहा।'

3. सिकन्दर विजयी नहीं, पराजित था :-

पाश्चात्य इतिहासकारों ने सिकन्दर को विजयी बताया था। परन्तु प्रसाद ने अपनी खोजों के आधार पर यह दिखाया है कि सिकन्दर विजयी नहीं, पराजित था। सिकन्दर ने भारत - विजय का विचार स्थगित किया था। इससे उनके विश्व - विजय का स्वर्णस्वप्न भंग हो गया। प्रसाद जी के अनुसार इसका कारण था कि सिकंदर की सेना पर भारतीय वीरों का आतंक बैठ गया था, यह विषय वर्तमान यूरोपीय इतिहास लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि पर्वतेश्वर की सेना ने यूनानियों का जिस वीरता के साथ सामना किया, वह सिकंदर को अभूतपूर्व और उन्नत जान पड़ा। इसीलिए उसने पौरव से संधि करना उचित समझा। यूनानी सेना का साहस टूट चुका था। इसी समय सिकंदर को सूचना मिली कि मगध ने लक्षाधिक सेना को संगठित किया। वह सेना पौरव की सेना से भी अधिक कुशल और शक्तिशालिनी थी। सिकंदर ने अपनी सेना को मगध की सेना का सामना करने के लिए समझाया। परन्तु यवन सेना ने सिकंदर की बात नहीं मानी। विवश होकर सिकंदर को रावी - तट से लौटना पड़ा।

सिकंदर रावी तट बढ़ गया था। प्रसाद ने इसका कारण बताया है कि उस समय पंचनद प्रदेश छोटे राज्यों में बैठा हुआ था। इतना ही नहीं, उन में पारस्परिक संगठन का सर्वथा अभाव था। बाद में परिस्थिति बदल गयी। पर्वतेश्वर की पराजय से चिंतित होकर, स्वदेश की स्वतंत्रता को संकट में जानकर अनेक भारतीय युवक

सचेत हुए। उन्होंने छोटी - छोटी शक्तियों को संगठित किया। यवन - सेना को लौटते समय पग - पग पर भारतीय संगठित सेना का सामना करना पड़ा। उसे अनेक बाधाओं और विध्नों को सहना पडा। उसे अनेक प्रकार की क्षति सहनी पड़ी। स्वयं सिकंदर भी ऐसे एक युद्ध में घायल हुआ। कुछ इतिहासकारों के अनुसार इसी घाव के कारण बैबिलोनिया में सिकंदर की मृत्यु हुई।

लगभग बीस वर्षों के बाद नये यूनानी सम्राट सिल्युकस ने अपने पूर्वी अधिकारी सिकंदर की इच्छा को पूरी करने का साहस किया। दो - चार छोटे - मोटे स्थानों को जीतने के बाद यवन सेना ने मगध - सेना का सामना किया। परंतु मगध - सेना ने युनानी सेना को भागने का रास्ता तक न दिया। अंत में सिल्युकस ने अपनी कन्या कार्नेलिया को चंद्रगुप्त से परिणय कराकर संधि कर ली। 'चन्द्रगुप्त' नाटक इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है।

4. चंद्रगुप्त मौर्य पिप्पलीकाननवासी क्षत्रिय वीर था, शूद्र नहीं :-

मैक्समूलर 'मौर्य' की उत्पति एक शूद्रा मुरा से उत्पन्न चंद्रगुप्त के जन्म से बताते हैं। परन्तु प्रसाद जी ने चंद्रगुप्त को बीर क्षत्रिय बताया है। उनके अनुसार चन्द्रगुप्त का जन्म पिप्पलीकानन के मोरिय जाति के क्षत्रियों में हुआ था। इन मोरियों का उल्लेख बौद्ध ग्रंथ दीघ निकाया के 'महापरिनिव्वाण सूद' में भी प्राप्त होता है।

5. तक्षशिला विश्वविद्यालय :-

हाबेल साहब ने अपनी पुस्तक 'History of Aryan Rule in India' में बताया है कि सिकंदर के आक्रमण - काल में तक्षशिला विश्वविद्यालय विद्रोह का प्रधान केंद्र था। वहाँ कोशल, काशी, मल्ल आदि राज्यों के राजकुमार विद्याध्ययन कर रहे थे। वहाँ उस समय कूट - विद्या और सैन्य - शास्त्र विशारद चाणक्य और उनके प्रिय शिष्य चन्द्रगुप्त वर्तमान थे। प्रसाद ने अपने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में तक्षशिला की कूटनीतिज्ञता को काफी महत्त्व दिया है।

6. चन्द्रगुप्त वृषल नहीं था :-

संस्कृत नाटककार विशाखदत्त ने अपने 'मुद्रा राक्षस' नाटक में चन्द्रगुप्त को 'वृषल' कहकर संबोधित किया है। कोष में वृषल शब्द का एक अर्थ शूद्र है। परन्तु प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य ने वृषलत्व की व्याख्या इस प्रकार दी है - ''आर्य क्रिया - कलापों का लोप हो जाने से इन लोगों (मौर्यो) को वृषलत्व मिला, वस्तुत: ये क्षत्रिय हैं। बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं है।''

प्र.11. नाटक के तत्वों के आधार पर 'चंद्रगुप्त' नाटक की समीक्षा कीजिए ।

1. प्रस्तावना :-

महान साहित्यकार बाबू जयशंकर प्रसाद कृत 'चंद्रगुप्त' नाटक हिन्दी साहित्याकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र है। नाटक के प्रधान तत्व इस प्रकार हैं - (1) कथानक (2) पात्र तथा चरित्र - चित्रण (3) कथोपकथन (4) भाषा तथा शैली (5) देश - काल - वातावण तथा अन्तर्द्वंद्व (6) रस - सृष्टि (7) उद्धेश्य (8) गीत - योजना और (9) रंगमंच।

इन तत्वों आधार पर हम 'चन्द्रगुप्त' नाटक पर विचार करेंगे।

1. कथानक :- 'चन्द्रगुप्त' नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। इसमें चंद्रगुप्त के द्वारा चाणक्य की सहायता से नंद - वंश का नाश, यवनों को भारत से भागाना, सिल्यूकस की कन्या कार्नोलिया से चंद्रगुप्त का विवाह आदि घटनायें वर्णित हैं। कहीं पात्रों तथा घटनाओं में कल्पना का सहारा लिया गाया है। फिर भी ऐतिहासिकता में अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ है। प्रत्युत उसमें जीवंतता आयी है। नाटक के आरम्भ का दृश्य बड़ा ही भव्य है। प्रकृतिक मनोरमता और प्राचीन भारतीय संस्कृति का केंद्र होने के कारण तक्षशिला का महत्व है।

2. पात्र और चरित्रचित्रण :- 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रय: सभी पुरुष पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं। उनमें नंद, राक्षस, वररुचि, चंद्रगुप्त, शकटार, चाणक्य, पर्वतेश्वर और आम्भीक तथा यवनों में सिकन्दर, सिल्यूकस, फिलिप्स, और नारी मेगास्थनीस - सभी ऐतिहासक हैं। पात्रों में क्लयाणी और कार्नेलिया के नाम भी इतिहास ग्रंथों में मिलते हैं। चन्द्रगुप्त नाटक का नायक है। उसमें धीरोदात्त नायक के सब लक्षण है। चाणक्य का पात्र नाटक में बहुत ही महत्तवपूर्ण है। नाटक के आरम्भ से लेकर अन्त तक वह दिखाई पड़ता है। सतर्कता, गौरवमय गंभीरता, दूरदर्शिता आदि गुणों से वह समन्विता है। सिंहरण देश - प्रेमी वीरथुवक है। देशद्रोही आम्भीक अन्त में देश - प्रेमी बनता है। राक्षस पात्र का चरित्र उभरकर नहीं आया है। प्रसाद जी ने चाणक्य के चरित्र को उदात्त रूप में चित्रित करने में राक्षस के चरित्र को गिरा दिया है।

नारी - पात्रों में अलका काल्पनिक पात्र है। प्रसाद जी ने अपने आदर्शों को उस के द्वारा प्रतिपादित किया है। वह देश - प्रेमी है। उसमें उदात्त पात्र के सभी लक्षण हैं। सुवासिनी एक काल्पनिक पात्र है। इस पात्र के द्वारा प्रसाद जी यह बताना चाहते हैं परिस्थितियों के कारण अनेक रूप घारण करने पर भी वह मूलत: एक ही है। मालविका एक गौण तथा काल्पनिक पात्र है। कार्नोलिया एक विदेशी पात्र है। प्रसाद ने इस पात्र के द्वारा भारत देश, उसकी संस्कृति और सभ्यता की प्रशंसा करायी है। प्रसाद के अधिकांश पुरुष - पात्र ही नहीं,

अधिकांश स्त्रियाँ भी आदर्श - प्रेम के ही हैं। प्रसाद की नारियाँ सदैव उदात्त भावों से परिपूर्ण रही हैं। पुरुषों की अपेक्षा वे सबल और महान रही हैं।

3. कथोपकथन :-

चन्द्रगुप्त में प्राय: कथोपकथन छोटे हैं। संवादों में रस के अनुकूल पदावली, भाषा और भाव - योजना दिखायी पड़ती है। बीर - रस संबंधी संवादों में उत्साह, गर्व, दर्प, आवेश, क्रोध सभी भाव समयानुसार व्यजित ह॥ जहाँ श्रृंगार की योजना हुई है, वहाँ भाषा और भाव - व्यंजना में तदनुकूल परिवर्तन होता है। कुछ संवाद भावुकता से समन्वित होने के कारण अत्यन्त मधुर तथा प्रभावोत्पादक हैं। कथोपकथनों से कथा आगे बढ़ती है। एक उदाहरण देखिये -

चाणक्य : केवल तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने केलिये ठह्रा था।

सिंहरण : आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी अस्त्र - शास्त्र की।

चाणक्य : अच्छा, तुम अब मालव में जाकर क्या करोगे?

सिंहरण : अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझें तो तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

क्थोपकथनों से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पडता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

मालविका : साम्राट, अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने है।

चन्द्रगुप्त : सघर्ष। युद्ध देखना चाहो तो मेरा ह्रदय फाडकर देखो मालविका। आशा निराशा का युद्ध भावों और अभावों का द्वन्द्व। कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्म सूची में रिक्त - चिन्ह लगा देता है।

राक्षस और सुवासिनी के वाक्यों से चाणकत्य के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

4. भाषा तथा शैली :- प्रसाद की भाषा की ये विशेषतायें हैं - (1) वह प्रवाहमयी है। (2) पात्रोचित है। (3) मार्मिक उक्तियों का संयोजन है। (4) अभीष्ट भावों को प्रकट करने में सक्षम है। (5) तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है। भाषा दुरूह न होकर सदा उपयुक्त रही है। शैली रोचक तथा प्रवाहमयी है।

चन्द्रगुप्त नाटक में भाषा के अनेक रूप मिलते हैं - (1) आलंकारिक भाषा (2) सरल भाषा (3) व्यावहारिक भाषा (4) धारावाहिक भाषा (5) कथात्मक भाषा। यत्र - तत्र सूक्तियों का प्रयोग भी किया गया है।

1. ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि - वैभव है।

2. स्मृति जीवन पुरस्कार है।

3. जीवन एक प्रश्न है और मरण है उस का अटल समाधान।

5. देश - काल वातावरण तथा अन्तर्द्वन्द्व :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक ऐतिहासिक नाटक है। इस कारण उसमें चन्द्रगुप्त कालीन आर्यावर्त की परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। राजनीति, धर्म, पात्र, गीत आदि में अन्तर्द्वंद्व प्रयुक्त हुआ है।

(क) राजनीतिक स्थिति :-

उत्तरापथ के खण्ड राज्य द्वेष से जर्जर थे। एक ओर नंद और पर्वतेश्वर का विरोध और दूसरी और आंभीक और पर्वतेश्वर का पारिवारिक संधर्ष था। आम्भीक यवनों को आर्यावर्त में प्रवेश करने केलिये आवश्यक सहायता करता है। पर्वतेश्वर डटकर उनका विरोध करता है। मालव और क्षुद्र जैसे छोटे - छोटे गणतंत्रों के शासकों का मिलना भी सरल नहीं था। मगध की राजनीतिक स्थिति अव्यवस्थित थी। नन्द विलासप्रिय, कामुक और मद्यप था। राक्षस मंत्री भी मद्यप था। जनता पर मानमाने अत्याचार होते थे। लोग परिवर्तन का अवसर ढूंढ रहे थे। नंद की पुत्री कल्याणी भी अपने पिता के शासन से असन्तुष्ट थी।

(ख) धार्मिक - संघर्ष :-

नंद बौद्ध था। राक्षस प्रच्छन्न बौद्ध था। चाणक्य वैदिक धर्मानुयायी था। ''बौद्ध और वैदिक धर्मों के बीच संघर्ष चलता थी। नंद ने वैदिक धर्मावलंबी शकटार को अंधकूप में रखा। उसने शकटार के पडोसी चणक का ब्राह्मणस्व छीन लिया। तक्षसिला गुरुकुल बैदिक - धर्म का केन्द्र था।

(ग) नारियों की स्थिति :-

माहिलाओं में पर्दे की प्रथा नहीं थी। वे स्वच्छदता से अपने विचार प्रस्तुत कर सकती थी; राजसभाओं में उपस्थित हो सकती थी। युद्धभूमि में भी जा सकती थी। शिक्षा महिलाओं को भी दी जाती थी। मालविका के मानचित्र खींचने से इस बात की पुष्टि होती है।

(घ) युद्ध वर्णन :-

युद्धों में गज – सेना, अश्व – सेना, रथ – सेना और पदातियों के अतिरिक्त नौ – सेना का भी उपयोग होता था। सैनिक कटार, धनुष, तीर आदि का उपयोग करते थे। आर्यो की रण – नीति ऐसी थी कि कृषक और निरीह लोग दु:ख नहीं पाते थे। किसान रण – भूमि के पास ही स्वच्छदता के साथ हल चलाते थे। यवनों की रण – नीति इससे भिन्न थी। निरीह जनता को लूटना, गाँवों को जलाना उनके साधारण काम थे।

(ङ) शिक्षा – व्यवस्था :-

अध्ययन और अध्यापन केलिए गुरुकुलों की व्यवस्था थी। उस समय तक्षशिला का गुरुकुल प्रसिद्ध था। वहाँ के नियम कठिन थे। वहाँ का स्नातक वहीं आचार्य भी बन सकता था। चात्रों को राजवृत्ति भी दी जाती थी। वहाँ अर्थशास्त्र, अस्त्र – शात्र भी पढाये जाते थे। वहाँ एक विद्यार्थी पाँच वर्षों तक अध्ययन करता था। गुरुकुल में आचार्य की आज्ञा ही मानी जाती थी।

(च) सामाजिक परिस्थिति :-

समाज में वर्ण – व्यवस्था का प्रचलन था। दाण्ड्यायन जैसे तपस्वी लोगों के आश्रम होते थे। वे राजा के पास नहीं जाते थे। राजा लोग ही उनके पास जाते थे। जनता में प्रांतीय भावना थी। चाणक्य, अलका जैसे लोग देश में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में लगे थे। विलास – कानन में राजा के साथ नागरिक भी मदिरा पी सकते थे।

6. रस – सृष्टि :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक में वीररस की प्रधानता है। श्रृंगार रस भी वीररस की पुष्टि में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त शात तथा अन्य रसों का संकेत भी मिलता है। नाटक का प्रारम्भ राजनीति से होता है और समापन प्रणय से। यही नाटक की रसमय विशेषता है।

7. उद्देश्य :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक की क्थावस्तु को देखने से स्पष्ट होता है कि भारतवासियों में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करना ही इसका प्रमुख उद्धेश्य है। यह बात अलका के चरित्र ओर उसके द्वारा गाये गये 'प्रणय गीत' से और स्पष्ट हो जाती है। साथ – साथ वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान करना नाटककार का उद्देश्य है।

8. गीत – योजना :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक में तेरह गीत हैं। ये गीत पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, प्रेम तथा अनुराग, देश – प्रेम तथा कोमल भावों के परिचायक है। कार्नोलिआ तथा अलका के द्वारा गाये गये गीतों में देश – प्रेम की भावना निहित हैं। प्रणय – गीतों में मादकता, उद्दाम यौवन की तरंग, व्याकुलता, उलझन तथा अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति मिलती है।

9. रंगमंच :-

'चन्द्रगुप्त' नाटक रंगमंच पर प्रदर्शित किया जा सकता है। अधिकाश घटनाएँ रंगमंच के उपयुक्त ही हैं। कुछ घटनाओं का रूपान्वित भी किया जा सकता है। रंगमंच के उपयुक्त होने से चन्द्रगुप्त पूर्णतया एक सफल नाटक है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

2. निर्मला

'निर्मला' उपन्यास में - प्रेमचन्द

प्र:1. निर्मला का चरित्र - चित्रण कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. प्रारम्भ
3. अनमेल विवाह
4. परिवारिक विडम्बना
5. मानसिक व्यथा तथा संघर्ष
6. आर्थिक संकट
7. अभिमान तथा मान-संरक्षण
8. प्राण - पखेरू
9. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के उपन्यास तथा कहानी क्षेत्रों में मुन्शी प्रेमचन्द का स्थान अनुपम तथा अद्वितीय है। उन्होंने निम्न वर्गीय, मध्यवर्गीय, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं को आधार बनाकर प्रतिज्ञा, वरदान, निर्मला, गबन, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि बारह उपन्यासों की और कफन, बडे भाई साहब, बडे घर की बेटी, पूस की रात, ईदगाह, ठाकुर का कुआँ, पंचपरमेश्वर, शंकनाद आदि 270 कहानियों की रचना की। उनकी प्रमुख कहानियाँ मानसरोवर नामक आठ भागों में प्रकाशित है।

पाश्चात्य साहित्य संप्रदाय से यथार्थवाद और भारतीय साहित्य विचारधारा से आदर्श वाद को लेकर प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को जन्म दिया। भारतीय जन - जीवन की नस - नस का चित्रण करके प्रेमचन्द अपने साहित्य द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। विविध दशाओं में होनेवाली कुरीतियों का प्रतिबिंब प्रेमचन्द के साहित्य में दर्शित होता है। उनके साहित्य में भारतीय जन - जीवन में होनेवाली समस्याएँ और

उनका समाधान प्राप्त होता है। उनका सारा साहित्य यथार्त की नींव पर आधारित है और उस पर वे एक महान आदर्श का महल खडा कर देते हैं।

(प्रेमचन्द के बारे जो भी लेख लिखना हो तथा सारे प्रश्नों के समाधानों के प्रारम्भ में यही 'प्रस्तावना' लिखें।)

2. प्रारम्भ :-

'निर्मला', 'निर्मला', उपन्यास की नायिका है। पिता उदयभानुलाल एक नामी वकील है। निर्मला चंचल, खिलाडिन सैर - तमाशा पर जान देनेवाली पन्द्रह साल की लडकी के रूप में उपन्यास में प्रथमतः पुस्तुत होती है। मुग्ध मनोहर सौन्दर्य कारिणी सुनहली प्रतिमा निर्मला सयानी होती है तो वह बडी गम्भीर, एकान्त प्रिय और लज्जाशील हो जाती है। पिता उदयभानुलाल निर्मला का विवाह बाबू भालचन्द्र सिन्ह के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिन्हा के साथ पक्का कर देता है। किन्तु उदयभानुलाल की अकाल मृत्यु होने के कारण निर्माला की शादी रुक जाती है।

3. अनमेल विवाह :-

निर्मला के घर के वैभव, दर्प, सम्मान आदि पिता के साथ ही चले जाते हैं। सारा परिवार निर्धनता की खाई में गिर जाता है। फलतः निर्मला का विवाह उसके पिता के समवयस्क विधुर वकील मुन्शी तोताराम के साथ होता है, जिसकी 'तोंद' निकल आयी थी। उनकी प्रथम पत्नी के तीन लडके रहते हैं - मसाराम सोलह साल का, जियाराम बारह और सियाराम सात वर्ष का। निर्मला तो घर की मालकिन बन जाती है, किन्तु जीवन धीरे - धीरे शुष्क होने लगता है। तोताराम की विधवा बहिन रुक्मिणी भी निर्मला से कुछ भिडने लगती है।

4. परिवारिक विडम्बना :-

निर्मला को तोताराम के पास बैठने और हँसने - बोलने में संकोच होता रहता है। पति में उसे पिता दिखाई देते है। 50 साल का होने के कारण निर्मला को प्रसन्न रखने केलिए तोताराम मेवे, मुरब्बे, मिठाइयाँ ला देने लगता है। सिनेमा, सरकस, थिएटर आदि दिखाने जाता है। पूरी आमदनी निर्मला के हाथों में रख देता है। किन्तु तोताराम में असलियत की कमी होने के कारण, उसकी बातों में और कामों में कोई रस न होता है, न उल्लास है, न उन्माद है, न ह्रदय है, केवल बनावट है, धोखा है और है शुष्क एवं नीरस आडम्बर। निर्मला भी कभी - कभी छोटे लडके सियाराम से भिडती है। फिर उस में उस मातृहीन अबोध बालक के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है।

तोताराम अपने को युवक बताने के लिए कसरत करने, घूमने - फिरने, तेल - मालिश करने, सिर के बालों को रंगने आदि करता रहता है। यह सब देख कर निर्मला को सन्देह होने लगता है कि कहीं पति तोताराम को 'उन्माद' का रोग तो नहीं हो रहा है। प्रि उस के साथ पालगों के साथ जैसा व्यवहार भी करने लगती है। फिर सोचती है, बेचारा अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहा है।

5. मानसिक व्यथा तथा संघर्ष :-

निर्मला धीरे - धीरे समझौते के रास्ते पर चलने लगती है। वह सोचने लगती है कि विधाताने उसे दु:ख की गठरी ढोने के लिए ही चुना है। तोताराम भी रूपवती कामिनी निर्मला के साथ आईने के सामने आकर खडे होने का साहस भी नहीं करता। निर्मला की ओर ताकने का भी उसे साहस नहीं होता। उसकी अनुपम छवि तोताराम के हृदय का शूल बन जाती है।

निर्मला में एक प्रकार से दार्शनिक विचार उत्पन्न होने लगा। वह तोताराम के बडे लडके माँसाराम को कुछ नाश्ता देने लगती है और उसी के साथ बैठ कर कुछ पढ़ती - लिखती भी है। तोताराम को यह बिलकुल भाता नहीं। उसे निर्मला पर शंका होने लगती है। वह भिड कर पूछता है, ''दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?'' तोताराम के इस व्यवहार पर निर्मला और मंसाराम अचेत - सा हो जाते हैं। निर्मला का हृदय धडकने लगता है। मांसाराम का स्वास्थ्य बिगड कर वह अपनी माँ की याद में आक्रन्दन करने लगता है। लेकिन तोताराम पुत्र से और भी भिडने लगता है और उस पर न पढ़ने का आरोप लगा कर जबरदस्त बोर्डिंग हाउस में रख देता है। मंसाराम पढ़ाई में और खेलों दोनों में प्रथम रहता है। तोताराम के इस दुव्यवहार का बहुत बुरा नतीजा निकलता है। मंसाराम ज्वर पीडित हो, मानसिक व्याकुल हो और माँ की यादों में पागल - सा हो कर मृत्यु की गोद में चला जाता है। निर्मला जैसा नाम है, वैसा ही उसका व्यवहार है। एक ओर पति तोताराम की शंका और दूसरी ओर मंसाराम की मृत्यु के कारण निर्मला मानसिक व्यथा तथा संघर्ष के कारण विचलित हो जाती है।

6. आर्थिक संकट :-

मंसाराम की मृत्यु पर निर्मला का हृदय और भी व्यथित होने लगता है। वह गर्भवती हो एक कन्या को जन्म देती है। तोताराम अपनी कारवाई पर पश्चात्ताप करने लगता है। वह सोचता है कि निर्मला से विवाह कर उसने निर्मला के जीवन का और अपने घर का नाश कर दिया है। दूसरा लडका जियाराम पिता को पुत्र (मंसाराम) घातक मानने लगता है। वह बुरी सोहबतों (bad friendship) के चंगुल में फँस कर निर्मला के गहनों की चोरी तक कर बैठता है। पुलिस की गिरफ्तारी में जाना पडता है और अन्त में वह आत्मघात कर लेता है।

तोताराम पूर्णतया जर्जर हो जाता है। अदालत भी जा न सकता है। सारे मुकद्दमों का नतीज भी उसके खिलाफ निकलता है। अत: कोई नया मुकद्दमा आता ही नहीं। छुट्टे पैसों (change) के लिए भी निर्मला से माँगना पडता है। निर्मला को अपनी पुत्री आशा का डर लगता है कि उसका जीवन भी अपना जीवन जैसा बरबाद न हो। इस लिए वह पैसा - पैसा जोडने लगती है। आर्थिक संकट बढ़ जाने से तोताराम का मकान नीलाम हो जाता है तो परिवार तंग गली में - एक छोटे घर में बस जाता है।

निर्मला का मन अर्थिक संकट के कारण और भी विकल होता है। हर बात पर वह भिडने लगती है। छोटे लडके सियाराम पर अपना अकारण आधिपत्य चलाती है। वह घर के वातावरण से डर कर झूठे साधुओं के चंगुल में फँस जाता है। उसे ढूँढने के लिए तोताराम निकल पडता है।

7. अभिमान तथा मान-संरक्षण :-

डॉ. भुवनमोहन सिन्हा की पत्नी सुधा के साथे निर्मला मैत्री होती है। निर्मला की दीन अवस्था पर उसे दया आती है। निर्मला की विडम्बना का कारण वह अपने पति मानकर निर्मला की बहन कृष्णा का विवाह अपने देवर से करवाती है। डॉ. भुवन मोहन पत्नी की अनुपस्थिति में निर्मला पर अनौचित्य अधिकार पाना चाहता है। निर्मला का संस्कार उसके प्रलोभन को ठुकरा देता है। सुधा पति का दुर्व्यवहार जान जाती है। फलत: डॉ. भुवन मोहन आत्मघात कर लेता है जिस पर सुधा कहती है, ''ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ। ऐसे सौभाग्यं से मैं वैध्व्य को बुरा नहीं मानती।''

8. प्राण - पखेरू :-

निर्मला न स्नान करती और न भोजन करती। ज्वरग्रस्त हो वह चारपाई पर लेट कर द्वारा की और ताकती रहती है। उसके अन्दर भी शून्य और बाहर भी शून्य। कोई चिन्ता नहीं, न कोई स्मृति, न कोई दु:ख, मस्तिष्क में स्पन्दन की शक्ति ही नहीं रहती है।

एक महीना और बीत जाता है। चिन्ता, शोक और दुरवस्था - त्रयताप का धावा चल रहा। निर्मला के लिए भोजन का ठिकाना नहीं, फिर दवा का जिक्र क्या होगा। वह दिन - दिन सूखती जाती है। निर्मला पहचानती है कि अब मृत्यु का द्वार दूर नहीं। वह अपनी पुत्री आशा को रुक्मिणी के हाथ सौंपकर वह कहती है, ''चाहे कुमारी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न गढिएगा''

तीन दिनों तक निर्मला की आँखों से आँसुओं की धारा बहती रहती है। मौन – रुदन मात्र चलता है। चौथे दिन सन्ध्या समय पशु – पक्षी अपने – अपने बसेरे को लौटते रहते हैं और निर्मला का प्राण पखेरू भी उपने बसेरे की ओर उड जाता है।

9. उपसंहार :-

निर्मला भारत की हीन, दीन तथा नैराश्य नारी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। भारत में स्त्री को देवी मान कर की जाने वाली उसकी पूजा तथा आराधना पुस्तकों तथा भाषणों तक ही सीमित है। कहा जाता है कि जहाँ नारा की पूजा होती है, वहाँ देवता आनन्दित होते हैं – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।' लेकिन भारत में नारी की स्थिति इसके नितान्त विरुद्ध है। राजनीति, धार्मिक तथा सामाजिक बिडम्बना, विद्याहीनता, आर्थिक अस्वतन्त्रता, शरीरिक रूप से अबला होना आदि अनेक कारणों से भारतीय नारी का जीवन सतत व्यथित हो रहा है। हर जगह, हर समय नारी की प्रताडना होती ही जा रही है। भारत की नारी क्षण – भण, मर – मर कर जीवन बिताती है।

प्रेमचन्द उपन्यास के अन्त में निर्मला की भावना व्यक्त करते हैं – 'औरतों के लिए रोज भोजन करने की आवश्यकता ही क्या?'

निर्मला का चरित्र पूर्णतया यथार्थवाद पर चित्रित है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र:2. उपन्यास के तत्त्वों पर 'निर्मला' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।

(अथवा)

'निर्मला' उपन्यास की तात्विक समीक्षा कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. उद्देश्य
3. कथावस्तु
4. पात्र तथा चरित्र - चित्रण
5. कथोपकथन
6. वातावरण
7. भाषा - शैली
8. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के उपन्यास तथा कहानी क्षेत्रों में मुन्शी प्रेमचन्द का स्थान अनुपम तथा अद्वितीय है। उन्होंने निम्न वर्गीय, मध्यवर्गीय, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं को आधार बनाकर प्रतिज्ञा, वरदान, निर्मला, गबन, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि बारह उपन्यासों की और कफन, बडे भाई साहब, बडे घर की बेटी, पूस की रात, ईदगाह, ठाकुर का कुआँ, पचपरमेश्वर, शंकनाद आदि 270 कहानियों की रचना की। उनकी प्रमुख कहानियाँ मानसरोवर नामक आठ भागों में प्रकाशित है।

पाश्चात्य साहित्य संप्रदाय से यथार्थवाद और भारतीय साहित्य विचारधारा से आदर्श वाद को लेकर प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को जन्म दिया। भारतीय जन - जीवन की नस - नस का चित्रण करके प्रेमचन्द अपने साहित्य द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। विविध दशाओं में होनेवाली कुरीतियों का प्रतिबिंब प्रेमचन्द के साहित्य में दर्शित होता है। उनके साहित्य में भारतीय जन - जीवन में होनेवाली समस्याएँ और

उनका समाधान प्राप्त होता है। उनका सारा साहित्य यथार्त की नींव पर आधारित है और उस पर वे एक महान आदर्श का महल खडा कर देते हैं।

(प्रेमचन्द के बारे जो भी लेख लिखना हो तथा सारे प्रश्नों के समाधानों के प्रारम्भ में यही 'प्रस्तावना' लिखें।)

2. उद्देश्य :-

प्रेमचन्द के साहित्य में भारतीय जनजीवन की नस - नस का चित्रण होता है। विविध दशाओं में होनेवाली कुरीतियों का प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में दर्शित होता है। उनकी हर कहानी और उनका हर उपन्यास किसी न किसी समस्या पर रचित है। वैसी समस्याओं में नारी समस्या एक है। पुन: उन समस्याओं में 'दहेज - प्रथा' एक है। दहेज दे न सकने कारण भारत में क्षण प्रति क्षण अनेक कन्याओं का जीवन दग्ध होता जा रहा है। कितनी ही कन्या ही कन्याओं का बूढे विधुरों के साथ विवाह हो रहा है। खेलती - कूदती और यौवन के सपनों में विचरनेवाली कन्या किसी बूढे की पत्नी बन कर पूर्णतया जीर्ण तथा शीर्ण होकर साँस छोड देती है। ऐसी कन्या - नारी के जीवन का चित्रण करना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य है। उसी उद्देश्य पर 'निर्मला' उपन्यास की रचना हुई है।

3. कथावस्तु :-

कथा किसी भी रचना का प्राण है। निर्मला एक नामी वकील उदयभानुलाल की पुत्री है। उसका विवाह भालचन्द्र सिनहा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिनहा से निश्चित होता है। उदयभानु लाल की अकस्मात मृत्यु होने के कारण निर्मला का विवाह रुक जाता है। निर्धनता के कारम निर्मला का विवाह उसके पिता के समवयस्क एक विधुर वकील, तीने लडकों के पिता मुन्शी तोताराम से होता है। पन्द्रह साला की सौर्द्य की प्रतिमा निर्मता पचास साल के तोताराम में पति का सही अनुराग प्राप्त न कर सकती। तोताराम का बडा लडका मंसाराम सोलह साल का है। निर्मला उससे पढ़ने - लिखने लगती है तो तोताराम शंकालु होकर निर्मला पर व्यंग्य वचनों का प्रहार करता है और लडके मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में भर्ती कर दता है। फलत: मंसाराम शारीरिक तथा मानसिक रूप से रोगग्रस्त हो कुढ - कुढ कर मर जाता है।

अब तोताराम के पश्चात्ताप होने से कोई लाभ नहीं होता। अन्य दो पुत्र भी भिड जाते हैं। मानसिक अस्थिरता के कारण तोताराम अदालत भी जा नहीं पाता। आमदनी गिर जाती है और मकान भी नीलाम हो जाता है। दूसरा लडका जियाराम चोरी करके आत्महत्या कर लेता है और तीसरा सियाराम कपटी साधुओं के जाल में पड जाता है।

अनमेल विवाह, पार्िरवारिक विडम्बना, मानसिक व्याथा, आर्थिक संकट आदि के कारण निर्मला का स्वास्थ्य दिन - ब - दिन गिरता जाता है। अन्य मनस्क - सी होती है। बेटी आशा को ननद रुक्मिणी के हाथ सौंप कर अन्तिम साँस लेती है।

4. पात्र तथा चरित्र - चित्रण :-

कथावस्तु उपन्यास का प्राण हो, तो पात्र तथा चरित्र - चित्रण आत्मा है। अनमेल विवाह के कारण वृद्ध विधुर से व्याह करके क्षण - क्षण विविध व्याथाओं के कारण कुढ़ - कुढ़ कर मरने वाली निर्मला उपन्यास की नायिका तथा प्रधान पात्र है। यौवन के सपनों पर पानी फेर कर पल - पल, रो - रोकर मरनेवाली भारतीय युवती के रूप में निर्मला का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार प्रेमचन्द निर्मला के चिन्ताग्रस्त, निरीह, दरिद्र, रोगग्रस्त, व्यथित, व्याकुलित, नैराश्य जीवन समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

विवाह पक्का होने पर निर्मला के पिता की मुत्यु होती है तो धन की आड में दूसरी युवती सुधा से विवाह करलेनेवाला भुवनमोहन सिन्हा निर्मला के जीवन पथ पर काण्टे छिडकने का प्रयत्न करता है। निर्मला का संस्कार सचेत होता है और वह अपने को बचा लेती है। पति तोताराम छोटे लडके सियाराम को ढूँढने निकलता है। शारीरिक तथा मानसिक रूप से रोगग्रस्त निर्मला चारपाई पर पडी रहती है और उसके प्राण परु निकल जाता है। निर्मला भारतीय व्यथित नारी के रूप में प्रस्तुत होती है।

'निर्मला' उपन्यास का दूसरा पात्र तोताराम है। पचास साल की उम्र में पुत्री की उम्रवाली पंद्रह साल की कन्या निर्मला के साथ विवाह करता है। वैवाहिक जीवन में विविध पदार्थ तथा तोफे देकर निर्मला को संतृत करना चाहता है और अपनी कमी को छिपाना चाहता है। फिर यह निर्मला के स्वच्छ चरित्र पर शंकालु हो जाता है। वह अपने ज्येष्ठ पुत्र मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में दाखिल करने से रोगग्रस्त हो उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरा लडका निर्मला के गहने चुरा कर पुलिस की पकड में आ जाता है और वह आत्मधात कर लेता है। छोटा लडका सियाराम झूठे साधुओं के चंगुल में फँस जाता है। तोताराम पागल - सा हो जाता है ौर उसका मकान भी नीलाम हो जाता है। सियाराम को ढूँढने के लिए वह निकल पडता है। एक महीने के बाद वह अकेला घर लौट आता है तो निर्मला का शव अन्त्यक्रियाओं के लिए तैयार रहता है।

निर्मला की माँ कल्याणी और पिता उदयभानु लाल, बहन कृष्णा; भुवनमोहन सिन्हा के माता - पिता, सुधा; रुक्मिणी आदि सारे पात्र कथा को अग्रसर करने तथा निर्मला के चरित्र को पुष्ट करने में आते हैं। कोई भी पात्र प्रधान हो या गौण अपना - अपना महत्त्व रखता है। पात्रों की परिकल्पना मनोवौज्ञानिक दशा पर हुई है।

5. कथोपकथन :-

निर्मला में कथोपकथन पात्रानुकूल, सन्दर्भोचित होकर कथा को अग्रसर करते हैं। वे पात्रों के मन तथा हृदय की छाप प्रकट करते है। प्रेमचन्द कथोपकथन नाटकीय शैली में रचते हैं। वे छोटे होकर प्रभावोत्पादक होते हैं। कुछ उदाहरण

धन सारे ऐबों को छिपा देगा।

....

मुझे जिन्दगी का रोग है।

....

यह सर्वनाश का मार्ग है।

....

तुम यहाँ क्यों आई ?

आप यहाँ क्या करने आये हैं ?

....

अब जीने की इच्छा नहीं और न बोलने की शक्ति ही है।

....

मैं ने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी।

....

कुलवती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करती।

....

जो काँटा बोया है ; उसका फल खाते क्यों इतना डरते हो ?

....

नम्रता पत्थर को भी मोम कर देती है।

....

तपस्वी लोग तो चन्दन - तिलक नहीं लगाते।

....

मौत तो बिना बुलाए आती है, बुलाने पर क्यों न आयेगी?

6. वातावरण :-

'निर्मला' उपन्यास का भारतीय जन - जीवन का मध्यवर्गीय वातावरण है। विवाह आदि में दहेज - प्रथा सामाजिक रोग के रूप में व्याप्त हुई है। धन के लालच में निश्चित विवाहों का भी खण्डन हो रहा है। निर्मला जैसी अबलाओं का जीवन नरकप्राय हो रहा है।

दहेज न दे सकने के कारण अबलाओं का विवाह वृद्धों के साथ होना, वृद्ध पति यौवन भरे पत्नी पर शंका करना और किसी - न - किसी रूप में पल - पल उसे प्रताडित करते रहना भारतीय समाज में जगह - जगह पर होता ही रहा है। फलत बेचारी उस अबला का जीवन पूर्णतया नाश हो रहा है।

निराश्रय अबला की समाज में सहायता करने वाले 'सुधा' जैसे पात्र बहुत कभ होते है। उस पर आक्रमण करनेवाले पुरुष जम्बुकों की भी समाज में कोई कमी नहीं।

निर्मला जैसी युवतियाँ हर गाँव में और हर गली में निर्जीव अपने भाग्य पर रो रही हैं और अन्ततोगत्वा आत्महत्या भी कर रही हैं।

7. भाषा - शैली :-

निर्मला उपन्यास की उर्दूमिश्रित व्यावहारिक खडीबोली होकर मुहवरेदार है। शैली सुलभ तथा एतिशील है। मुँङ फेरना, ठिठकगयी, छीकते नाक कटती है, इतनी क्या परवाह, ताबडतोड, फल निकाले फुफकार रहा है - आदि लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

8. उपसंहार :-

प्रेमचन्द इतने महान हैं कि उनका संपूर्ण साहित्य भारत की सारी भाषाओं में और विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनूदित किया गया है। संत कबीर के पश्चात प्रेमचन्द ऐसे महान साहित्यकार हैं जिन्होंने सामाजिक विषमताओं का खण्डन करके समाज को सुधारने का प्रयत्न किया और समाज को आदर्शोन्मुख करने का प्रयत्न किया।

प्रेमचन्द उपन्यास तथा कहानी क्षेत्रों में महान योद्धा हैं। वे अपनी कलम को जिधर याहे उधर मोड सकते हैं। इसी कारम वे कलम के सिपाही, उपन्यास सम्राट तथा कहानी सम्राट आदि उपाधियों से आभूषित किये गये।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र:3. 'निर्मला' उपन्यास में तोताराम का चरित्र चित्रण कीजिए। (Short Notes Question)

पचास साल का उम्रवाला तोताराम निर्मला उपन्यास का एक पात्र है। पत्नी के स्वर्गवास होने के कारण घर सम्भालने के लिए और तीन पुत्रों की देख - रेख करने के लिए पुन: पंद्रह साल की निर्मला के साथ विवाह कर लेता है। वयोभेद अधिक होने के कारण निर्मला को वह पति के रूप में दाम्पत्य सुख दे नहीं सकता। अपनी कमी को दूर करने के लिए वह निर्मला को स्वादिष्ट पदार्थ लाकर खिलाने लगता है और सैर सपाटों में घुमाता रहता है। किन्तु वह पहचानता है कि पत्नी के लिए ये सब चीजें गौण होती हैं।

तोताराम अपने को युवा बनाने के लिए कसरत, तेलमालिश और सिर के बालों को रंगने लगते लगता है। फिर वह तीन चोरों का सामना कर उनको मार भगाने का भी बहाना करता है। निर्मला यह सब पागलपन समझती है और कभी - कभी पति पर उसे दया आकर सोचने लगती है, ''वह पाप का प्रयश्चित्त कर रहा है।'' निर्मला समझौते में आकर गृहिणी का व्यवहार पूरा सम्हालती रहती है और तोताराम की विधवा बहन और पुत्र मंसाराम, जियाराम और सियाराम के प्रति स्नेह तथा आदर बँटाती है।

निर्मला तोताराम के प्रथम पुत्र मंसाराम से कुछ पढ़ना - लिखना सीख रही तो तोताराम उनदोनों के शील पर शंका करता है। निर्मला से वह कहता है, ''दिन में एक ही बार पढाता है या कई बार?'' इस पर निर्मला व्यथित होती है। पिता के इस अनुचित व्यवहार पर मंसाराम के हृदय को धक्का लगता है। पढाई में और खेलों में वह सदा प्रथम रहने पर भी जबरदस्त उसे ले जाकर बोर्डिंग हाउस में छोड आता है। मानसिक व्यथा के कारण वह ज्वरग्रस्त होकर मृत्यु की गोद में चला जाता है।

मझला लडका जियाराम के दिल को धक्का लगता है। वह पिता तोताराम से भिडता है और कुछ आवारे लडकों के साथ मिलकर घूमने लगता है। एक दिन आधी रात वह निर्मला के पाँच - छ: हजार रुपये कीमतवाले गहने चुराकर पुलिस के चंगुल में फँस जाता है और वह आत्मघात भी कर लेता है।

छोटा लडका सियाराम पढ़ना – लिखना चाहता ह। इस बीच में तोताराम का मन अव्यवस्थित हो जाता है। वह अदालत में भी ठीक जा न पाता है। एक – दो भुकद्दमों का फैसला उसके विरुद्ध निकलता है। मुकद्दमे न मिलने के कारण आमदनी गिर जाती है। घर के नीलाम होने पर सारा परिवार एक तंग गली के छाटे घर में जा बसता है। निर्मला घर का खर्च कम करने के नियम पर कंजूस बन जाती है। तोताराम को भी पैसे – पैसे के लिए निर्मला पर आधारित होना पडता है। निर्मला छोटे लडके सियाराम को कुछ चीजें लाने के लिए बार – बार दूकान भेजती रहती है जिस पर सियाराम भिडता है। छोटे और अबोध बच्चे का दिल घर के वातावरण से ऊब कर टुकडे हो जाता है। फलतः वह झूटे साधुओं के कुचक्र में फँस जाता है।

तोताराम पूर्णतया आर्थिक, सामाजिक, मानसिक रूप से गिर जाता है। तीनों पुत्रों का छूट जाना उसके लिए नरक से भी कटु लगता है। निर्मला बीमार हो जाती है। तोताराम छोटे लडके सियाराम को ढूँढने के लिए घर से निकल पडता है। एक महीना बीत जाता है। कहीं भी लडके का पता नहीं लगता।

थका – मांदा तोताराम एक दिन सन्ध्या समय घर लौटता है। पत्नी निर्मला का शव अन्तिम संस्कार के लिए तैयार रहता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

3. चिन्तामणि

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

प्र:1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की निबन्ध शैली पर लेख लिखिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. निबन्धकार की वैयक्तिकता
3. निबन्ध और काव्य
4. निबन्ध के प्रकार
5. शुक्ल जी के आरम्भिक निबन्ध
6. प्रोढावस्था के निबन्ध
7. हास्या व्यंग्य और विनोद
8. भाषा - शैली
9. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना साहित्य तथा निबन्ध साहित्य के पितामह माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी आलोचना क्षेत्र में एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया। अपनी मौलिक रचनाओं के द्वारा उन्होंने निबन्ध क्षेत्र को समृद्ध किया। निबन्ध वैसे गद्य की कसौटी माना जाता है। निबन्ध एक प्रकार से अंग्रेजी साहित्य की देन है। अंग्रेजी में जो लेख (Essay) कहा जाता है वही हिन्दी में आकर निबन्ध बन गया है।

2. निबन्धकार की वैयक्तिकता :-

निबन्ध में निबन्धकार कभी अपने व्यक्तिगत विचारों के चित्रण के लिए कभी - कभी विषयान्तर जाकर पुन: विषय वस्तु में आ जाते हैं। यह एक प्रकार से अंग्रेजी निबन्ध शैली का लक्षण है। निबन्धकार का

लक्ष्य विषय का प्रतिपादन है। शुक्ल जी निबन्ध में विषय के प्रस्तुतीकरण के साथ अपने वैयक्तिक विचार भी पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। इस से विषय को समझने में आसान होता है।

3. निबन्ध और काव्य :-

निबन्ध विशुद्ध साहित्य का प्रधान अंग है। निबन्ध गद्य काव्य के अन्तर्गत आता है। विचारात्मकता के कारण निबन्ध में भावात्मकता कुणिठत नहीं होती । सम्यक अनुशीलन से निबन्ध के प्रारम्भ, विकास तथा समापन में रोचकता आती है।

आचार्य शुक्ल जी निबन्ध को गद्य साहित्य का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। उनका कथन हैं – 'निबन्ध गद्य की कसौटी है, भाषा का पूर्ण विकास निबंन्धों में ही सब से अधिक संभव है। निबन्धों के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति विशिष्ट रूप में हो सकती है। शुक्ल जी के निबन्ध विचार प्रधान और विषय प्रधान दोनों हैं। उनके निबन्ध अधिकांश आत्मानुभूति पर चलते हैं, शुक्ल जी की निबन्ध रचना में बुद्धि और हृदय का समन्वय प्राप्त होता है। यह विषय चिन्तामणि के 'निवेदन' के द्वारा स्पष्ट होता है। हमें उन निबन्धों में शुक्ल जी के विचार दर्शित होता है॥ लेकिन ये विचार कोरे नहीं, बल्कि भावना से समन्वित है या साम्मिश्रित है।

4. निबन्ध के प्रकार :-

सामन्यत: निबन्ध के पाँच प्रकार होते हां या बताये जाते हैं।

ये – 1. विचारात्मक

2. भावात्मक

3. आत्म व्यंजक

4. वर्णनात्मक और

5. कथात्मक,

लेकिन शैली और अभिव्यक्ति के अनुसार निबन्ध के दो प्रकार माने जाते हैं –

1. विचारात्मक

2. भावात्मक

इन में विचारात्मक निबन्ध अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। शुक्ल जी के निबन्धों का अनुशीलन करने पर हमें उनके निबन्धों में अधिकत: विचारात्मकता दर्शित होती है, पर भावात्मकता के साथ।

5. शुक्ल जी के आरम्भिक निबन्ध :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में कुछ निबन्धों की रचना की है। ये - साहित्य भाषा की शक्ति, उपन्यास, भारतेन्दु हरिचन्द्र और हिन्दी, मित्रता आदि हैं। इन में कुछ निबन्ध 'सरस्वती' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुये। इन में मित्रता नामक निबन्ध जीवन के व्यवहारिक रूप को लेकर चलता है। मित्रता से होने वाले लाभ और हानि की विविध रूपों में चर्चा हुई है।

6. प्रौढावस्था के निब्नध :-

आचार्य शुक्ल जी की प्रौढावस्था में लिखें गये सारे निबन्ध 'चिन्तामणि' में संगृहीत है। उन में भावों या मनोविकारों पर लिखे गये निबन्ध एक श्रेणी में आते है और समाक्षात्मक निबन्ध दूसरी श्रेणी के है। कविता क्या है, काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्यक बोध के विविध रूप, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, तुलसी की भक्ति, करुणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा, ईर्ष्या, भय और क्रोध निबन्ध भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गये है।

आचार्य शुक्ल किसी भी विषय को साहित्य की दृष्टि से देखा करते हैं। अत: उन्होंने भावों को साहित्य का रूप प्रदान किया। उनके विबन्धों में साहित्य का सुन्दर समावेश होता है। शुक्ल जी में सरलता, रोचकता और साहित्यिकता का समावेश होता है।

भ्रमरगीत सार, जायसी ग्रंन्थावली रससिद्धान्त की भूमिका और गोस्वामी तुलसीदास के निबन्ध - भी समीक्षात्मक निबन्धों के अन्तर्गत आ जाते हैं। शुक्ल जी ने उनके लिए अलग-अलग नाम भी दिये हैं। व्यवहारिक समीक्षा और सौद्धन्तिक समीक्षा दोनों में अध्ययन, मनन और चिन्तन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आचार्य शुक्ल के निबन्धों में संघठित विचारों की अभिव्यक्ति और उन में निहित व्यक्तित्व प्रकट होते हैं।

विषय प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान की चर्चा में आचार्य शुक्ल ने 'चिन्तामणि' के 'निवेदन' में स्वयम कहा है - 'इस बात का निर्णय मैं विज्ञ पाठकों पर छोडता हूँ कि मेरे निबन्ध विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान।' वस्तुत: उनके निबन्ध वैयक्तिक (व्यक्ति प्रधान) लगते है। लेकिन सहृदयता के साथ अनुशीलन करने पर उनके निबन्धों में विषय की गरिमा दर्शित होती है। किंतु निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं शुक्ल जी ने निबन्धगत

विषय और व्यक्तित्व दोनों को सामान स्थान दिया है। उनके निबन्धों में विशिष्ट आत्माभिव्यक्ति प्रकट होती है।

7. हास्य – व्यंग्य और विनोद :-

आचार्य शुक्ल अपने निबन्धों में हास्य, व्यंग्य और विनोद समय – समय पर करते जाते हैं। उदाहरण के लिए वे वाग्वीर आदि की चर्चा करते हैं। लेकिन उनका हास्य शिष्ट तथा सारगर्भित है।

8. भाषा शैली :-

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि – शुक्ल जी के निबन्ध दो प्रकार के हैं –

1. भावात्मक
2. समीक्षात्मक

भवों पर लिखे गये निबन्धों की भाषा, समीक्षात्मक निबन्धों की अपेक्षा सरल है। उन में प्रचलित तद्भव शब्दों की और मुहावरों की प्रधानता है। लज्जा और ग्लानि नामक निबन्ध में मुहावरों का सुन्दर समावेश हुआ है। शुक्ल जी के समीक्षात्मक निबन्धों में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। चाहे शब्द तत्सम हो या तद्भव हो शुक्ल जी विशिष्ट शब्द ही अपने निबन्धों में गत देते है। जैसे स्वर्णकार एक गहने में तरह – तरह के रत्न और मोती गढ देता है उसी प्रकार शुक्ल जी ने अपने निबन्धों में मोतियों जैसे सुन्दर शब्दों का समाहार किया।

9. उपसंहार :-

हिन्दी साहित्य के निबन्धकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का महात्वपूर्ण स्थान है। उनके पूर्व हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के निबन्ध किसी से भी नहीं लिखे गये थे। विषय प्रतिपादन में समिक्षा विधान में और आलोचना ण्द्धति में शुक्ल जी अनुपम तथा अद्धितीय हैं। शुक्ल जी के विचारात्मक निबन्ध उच्चकोटि के हैं। उन्होंने अपने निबन्धों द्वारा हिन्दी साहित्य को अनुपम रूप में समृद्ध किया। इसी कारण उनके सारे निबन्ध प्रौढ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निबन्धकार की दृष्टि से आचार्य शुक्ल जी का स्थान अनोखा है। उन्होंने अपने लिये निबन्धों का जो क्षेत्र चुना है; उसके वे एक मात्र सम्राट है या अधिपति है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी सर्वमान्य तथा अप्रमेय उच्यकोटि के निबन्धकार हैं।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

चिन्तामणि

भाव या मनोविकार

सप्रसंग व्याख्या :

1. **लोक रक्षा और लोक रंजन की सारी व्यवस्था का ढ़ाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।**

1. **प्रस्तावना :**

यह उद्धरण सफल साहित्यकार, प्रसिद्ध इतिहासकार, अनुपम तथा अद्वितीय समालोचक एवं अतुलित निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विरचित भाव या मनोविकार नामक निबन्ध से दिया गया है ।

2. **सन्दर्भ :**

भाव या मनोविकार के अन्तर्गत शुक्ल जी शील या चरित्र के मूल भावों की चर्चा करते हैं । उसके अनुरूप लोक-रक्षा और लोक-रंजन की व्यवस्था पर कलम चलाते हैं ।

3. **व्याख्या :**

मानव जीवन में शील या चरित्र का महत्त्व होता है । शील, शक्ति तथा सौन्दर्य के प्रतिरूप राम लोक-रक्षक के रूप में हमारे सामने आते लोक-रावण राक्षस का अन्त करके राम ने धर्म की स्थापना की । इसीलिए राम के बारे में 'रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता' कहा गया है । रामावतार में रावणत्व पर रामत्व की विजय होकर लोक मंगल की स्थापना हुई ।

महाभारत युद्ध में पांचजन्य का पूरण करके जगद्गुरू कृष्णचन्द्र ने कौरवों का दमन और पाण्डवों का उत्थान किया जिससे लोक-रंजक (लोक-मंगल) हुआ । उनका कथन है -

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ;

अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्''

इस प्रकार राम 'लोक-रक्षक' के रूप में और कृष्ण 'लोक-रंजक' के रूप में विश्व में विख्यात हुए। शुक्ल जी का कथन है - धर्म-शासन, राज-शासन और मत-शासन लोक-मंगल के मार्ग पर प्रयुक्त हों ।

4. विशेषताएँ :

(क). यहाँ शुक्ल जी भाव या मनोविकारों की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हैं ।

(ख). लोकरक्षा और लोक-रंजन करनेवाले परमात्मा के अवतार माने जाते हैं ।

(ग). शुक्ल जी यहाँ परोक्ष रूप से राम और कृष्ण के अवतारों का उल्लेख करते हैं ।

2. भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है ।

1. प्रसंग :

यह उद्धरण सफल साहित्यकार, प्रसिद्ध इतिहासकार, अनुपम तथा अद्वितीय समालोचक एवं अतुलित निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विरचित भाव या मनोविकार नामक निबन्ध से दिया गया है ।

2. सन्दर्भ :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी यहाँ प्रवृत्ति-निवृत्ति, कविता, भक्ति और धर्म की चर्चा करते हुए कहते है -'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।'

3. व्याख्या :

मानव में प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है । शासन के अन्तर्गत आकर वे बाहरी व्यवस्था तक ही सीमित होती हैं । सच्ची प्रवृत्ति-निवृत्ति मानव के भीतर होती हैं । उनको कविता जगाती है । उपनिषदों में 'रसो वै स:'-वही आनन्द है, परमात्मा है - कहा गया। कवि का अर्थ - कृतिकार, परमात्मा है । कवि कृत कविता आनन्द प्रदान करती है । कविता, धर्म-क्षेत्र में आकर भक्ति भावना जगाती है । हिन्दी साहित्य में संपूर्ण भक्ति काल इसका साक्षी है ।

यहाँ शुक्ल जी दो विषय प्रस्तुत करते हैं - 1. कविता भक्ति भावना को जगाती हैं और 2. धर्म की रसात्मक अनुभूति भक्ति है ।

धर्म का अर्थ है किसी एक अनुष्ठान के प्रति अनुरक्त होना । धर्म मानव के मन को तथा आत्मा को भगवान के मार्ग पर अग्रसर करती है । धर्म मार्गानुवर्त व्यक्ति भगवान का मनन तथा चिन्तन करते करते उसी में लीन हो जाता है । उसी को 'भक्ति' की तन्मयता कहते हैं । वही आत्म-समर्पण कहलाता है । वही रसात्मक अनुभूति-'रसो वै स:' है । वह एक प्रकार की तल्लीनता है और मुक्तावस्था है ।

इस प्रकार भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है ।

4. विशेषताएँ :

(क). यहाँ कविता, धर्म, भक्ति, रस तथा अनुभूति की समालोचना हुई है ।

(ख). भक्ति अन्नमय कोश के जीव को आनन्दमय लोक में ले जाती है।

(ग). भक्ति का प्रारम्भ धर्म से होता है । भक्ति को जागृत करनेवाला धर्म है ।

प्र.2. 'भाव या मनोविकार' निबन्ध का सारांश लिखिए ।

1. प्रस्तावना :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना साहित्य तथा निबन्ध साहित्य के पितामह माने जाते हैं । उन्होंने हिन्दी आलोचना क्षेत्र में एक विशिष्ठ आदर्श स्थापित किया । अपनी मौलिक रचनाओं के द्वारा उन्होंने निबन्ध क्षेत्र को समृद्ध किया । निबन्ध वैसे गद्य की कसौटी माना जाता है । निबन्ध एक प्रकार से अंग्रेजी साहित्य की देन है । अंग्रेजी में जो लेख (ESSAY) कहा जाता है वही हिन्दी में आकर निबन्ध बन गया है ।

2. अनुभूति की प्रारम्भ दशा :

प्राणी के जीवन का आरम्भ अनुभूति के सुख-दु:ख के द्वन्द्व से ही होता है । बच्चे के छोटे-से हृदय में पहले सुख और दु:ख की सामान्य अनुभूति होती है । पेट का भरना या खाली रहना ही अनुभूति का कारण होता है । जीवन के आरम्भ में इन्हीं दोनों के चिह्न हँसने में और रोने में देखे जाते हैं ।

3. भाव या मनोविकारों के विविध रूप :

विविध विषयों के बोध का विधान प्राप्त होने पर ही उनसे सम्बन्धित इच्छा की अनेक रूपता के अनुसार अनुभूति के जो भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं वे भाव या मनोविकार कहलाते हैं । सुख और दु:ख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का रूप धारण करती है । शरीर में कोई सुई चुभने से होनेवाली पीडा सामान्य दु:ख है । अगर सुई चुभानेवाला कोई व्यक्ति हो तो दु:ख की भावना बढ़ कर मनोविकार में परिवर्तित होगी जिसे क्रोध कहते हैं । बालकों का कष्ट या रोना देखकर हमें एक विशेष प्रकार का दु:ख होने लगता है जिसे दया या करुणा कहते हैं । अपने वश में न होकर पहुँचनेवाले भावी अनिष्ट के निश्चय से होने वाला दु:ख भय कहलाता है । बहुत छोटे बच्चों में यह भय की भावना नहीं होती चाहे कोई उसे मारने के लिए हाथ भी उठाये ।

4. अनुभूति : सुख और दु:ख

जिस प्रकार रसायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं उसी प्रकार भावों या मनोविकारों की अनुभूतियाँ परस्पर सुख या दु:ख की मूल अनुभूति से भिन्न होती हैं । विषय बोध की विभिन्नता के अनुसार मनोविकारों की अनेक रूपता का विकास होता है । हानि या दु:ख के कारण में हानि या दु:ख पहुँचाने की चेतना वृत्ति पर क्रोध उत्पन्न होता है । कहीं हमें क्लेशकारिणी बातों का पता चलता है, हमारा अन्त:करण भावी आपदा का निश्चय कराने लगता है तब हमें भय होता है और बचने के लिए भाग पडते हैं । इसी प्रकार किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति सुखानुभूति होने पर उसकी प्राप्ति, रक्षा या संयोग को प्रेरणा करनेवाले लोभ या प्रेम के वशीभूत होता है ।

सुख और दु:ख दोनों की अनुभूतियाँ कुछ शारीरिक क्रियाओं की प्रेरणा, प्रवृत्ति के रूप में करती है । सुख की अनुभूति होने पर हँसन, कूदना और सुख पहुँचानेवाली वस्तु से लगे रहना आदि करेंगे । इसी प्रकार शुद्ध दु:ख में हाथ-पैर पटकेंगे, रोएंगे, चिल्लायेंगे और दु:ख पहुँचानेवाले से हट जायेंगे । सुख और दु:ख के ये अनिवार्य लक्षण है और किसी प्रकार के प्रयत्न या इच्छा का स्वरूप नहीं रहता ।

शरीर धर्म मात्र से बहुत-थोडे भावों की निर्दिष्ट और पूर्ण व्यंजना हो सकती है । उदाहरण के लिए कम्प के तीन कारण बताये जा सकते हैं - (1) शीत की संवेदना (2) भय और (3) क्रोध और प्रेम का वेग। भागना, छिपना या मरना-झपटना इत्यादि प्रयत्नों द्वारा इच्छा के स्वरूप का पता लग जाता है । सभ्य जातियों में इन प्रयत्नों का स्थान बहुत कम होता है । मुँह से निकलते हुए वचन ही भावों की व्यंजना व्यक्त करते हैं । इसी से साहित्य-मीमांसकों ने अनुभाव के अन्तर्गत आश्रय की उक्तियों को विशेष स्थान दिया है ।

5. अनुभूति की व्यंजना तथा वाणी :

अनुभूति की व्यंजना शारीरिक क्रियाकलापों से अधिक वाणी के द्वारा व्यक्त होती है । ''मैं उसे पीस डालूँगा'' शब्दों के द्वारा क्रोध की व्यंजना; 'कहीं वह वस्तु हमें मिल जाती!' शब्दों में लोभ का पता और 'रामरावणयोर्युद्धम् रामरावणयोरिव' वाणी द्वारा वीरता की अनुभूति व्यक्त होते हैं । भावों द्वारा प्रेरित प्रयत्न या व्यापार परिमित होते हैं । पर वाणी के प्रसार की कोई सीमा नहीं रहती । तोडना-फोडना, मारना-पीटना इत्यादि वास्तविक व्यापार क्रोध के हैं । 'किसी को धूल में मिला देना, चटनी कर डालना, किसी का घर, खोद का तालाब बना डालना' आदि क्रोध के भाव को व्यक्त करना है ।

समस्त मानव जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं । मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाये जाते हैं । भावों के विशेष संघठन में शील या चरित्र का मूल महत्त्वपूर्ण होता है । लोक-रक्षा (राम) लोक-रंजन (कृष्ण) की सारी व्यवस्था का ढाँच इन्हीं पर ठहराया गया है । धर्म-शासन, राज-शासन, मन-शासन सब में लोक-रक्षण और लोक-रंजन ही प्रधान है । इनका सदुपयोग भी हुआ है और कभी दुरूपयोग भी । कभी लोक कल्याण के लिए और कभी संकुचित विधान की सफलता के लिए भी मनोविकारों से काम लिया गया है ।

5. भावक्षेत्र की पवित्रता :

धर्म-शासन, राज-शासन या सम्प्रदाय-शासन मनुष्य जाति के भय और लोभ से पूरा काम लिया गया है । राज-शासन में दण्ड का भय और अनुग्रह का लोप प्रयुक्त हुए हैं । धर्म-शासन और मत-शासन में नरक का भय और स्वर्ग का लोभ बताये गये हैं । अत: समाज में भय और लोभ परम्परागत रूप से प्रचलित होते आ रहे हैं । एक ओर अपनी रक्षा और स्वार्थ-सिद्धि के लिए शासकवर्ग और दूसरी ओर अपने स्वरूप-वैचित्र्य की रक्षा और अपना प्रभाव की प्रतिष्ठा के लिए धर्म प्रवर्तक और आचार्य उनसे काम लेते आये हैं । अपने द्वेष और संकुचित विचारों के प्रचार के लिए भी मत-प्रवर्तक जनता को कँपाते और लपकाते आये हैं । एक जाति की मूर्तिपूजा को दूसरी जाति के मत-प्रवर्तक दोषपूर्ण बताते हैं । भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवालों के संप्रदाय को दूसरे संप्रदाय के प्रचारक उनका दर्शन पापपूर्ण बताते हैं । यहाँ शुक्ल जी कहते हैं -''भावना अत्यन्त पवित्र है। उसे इस प्रकार गन्दा करना लोग के प्रति भारी अपराध समझना चाहिए ।''

6. उपसंहार :

शासन की पहुँच प्रवृत्ति और निवृत्ति की बाहरी व्यवस्था तक ही सीमित है । भीतरी या सच्ची प्रवृत्ति-निवृत्ति को जागरित करनेवाली शक्ति कविता है । कविता धर्म के क्षेत्र में भक्ति भावना को जगाती रहती है । भगवान को आत्मसमर्पण करना ही भक्ति है और वही धर्म की रसात्मक अनुभूति है । भक्ति में व्यक्ति का कल्याण और लोक का कल्याण (मंगल) निहित है । भक्ति हृदयगत भावना है । व्यक्ति को प्रकृत्ति के क्षेत्र में अपने हृदय का प्रसार करना चाहिए । ज्ञान बौद्धिक है और हृदय रागात्मक दोनों के समन्वय में लोकमंगल निहित है । रागात्मिक वृत्ति के प्रसार के बिना विश्व के साथ जीवन का सामंजस्य हो नहीं सकता । मनुष्य के सुख और आनन्द का मेल शेष-प्रकृति के सुख-सौन्दर्य के साथ होना चाहिए । तृण-गुल्म, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि सब की रक्षा के भाव के साथ मानव को समन्वित होना चाहिए । तब मानव जन्म का उद्देश्य पूरा होगा और वह जगत का सच्चा प्रतिनिधि होगा । काव्य-योग भी यही विषय बताता है ।

सच्चे कवियों की वाणी भी इसी का प्रतिपादन करती है –

विधि के बनाये जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ

खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देन – ठाकुर

उत्साह

सप्रसंग व्याख्या :

साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है।

× × × ×

कर्म सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साह कहलाता हैं ।

× × × ×

कर्म मात्र के संपादन में जो तत्परता-पूर्ण आनन्द देख जाता है, वह भी उत्साह ही कहा जाता है

× × × ×

जब तक आनन्द का लगाव किसी क्रिया व्यापार या उसकी भावना के साथ नहीं दिखाई पडता तब तक उसे 'उत्साह' क संज्ञा प्राप्त नहीं होती ।

× × × ×

प्रयत्न और कर्म संकल्प उत्साह नामक आनन्द के नित्य लक्षण हैं ।

× × × ×

कर्म भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है वस्तु या व्यक्ति भावना नहीं ।

× × × ×

कर्म में आनन्द अनुभव करनेवालो ही का नाम कर्मण्य है ।

1. प्रस्तावना:

यह उद्धरण सफल साहित्यकार, प्रसिद्ध इतिहासकार, अनुपम तथा अद्वितीय समालोचक एवं अतुलित निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'उत्साह' नामक निबन्ध से दिया गया है ।

2. सन्दर्भ :

आचार्य शुक्लजी यहाँ उत्साह तथा आनन्द की परिणति होती है ।

3. व्याख्या :

उत्साह कर्मण्य भावना से सम्बन्धित है । उत्साह में साहसपूर्ण आनन्द की उमंग रहती है । उत्साह का आनन्द कर्म-सौदर्न्य से प्राप्त होता है । उत्साह में साहस का योग रहता है । पर कर्म मात्र के संपादन में दिखाई देनेवाला तत्परता पूर्ण आनन्द उत्साह कहलाता है । मानव का आनन्द सच्चे क्रिया-कलापों में निहित है । तभी उसे उत्साह कह सकते हैं । प्रयत्न और कर्म-संकल्प में उत्साह का आनन्द सदा निहित रहता है । ऐसे लोगों को कर्मवीर कहना चाहिए । वस्तु या व्यक्ति की भावना से उत्साह उत्पन्न नहीं होता है । कर्म भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है । उत्साह में साहस और आनन्द की समन्वय भावना होती है कर्म और फल की समन्वय अनुभूति ही उत्साह है । उस अनुभूति में प्रेरणा तथा तत्परता रहती है ।

फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है । इससे सच्चा उत्साह कुण्ठित होता है । कर्म की भावना में ही सच्चा उत्साह उत्पन्न होता हैं । प्रयत्न बुद्धि द्वारा निश्चित योजना है । सारी भावनाएँ जाकर कर्म में समन्वित होती हैं। सच्चा आनन्द कर्म में निहित है क्योंकि कर्म चेतनाप्रद है । कर्म रहित उत्साह में आनन्द की रेखा तक नहीं रहती, आलस्य रहता है । अत: कर्म, उत्साह, आनन्द और फलप्राप्ति परस्पर पूरक है ।

4. विशेषताएँ :

कर्मपुष्ट तथा कर्म निष्ट होने से उत्साह का महत्त्व होता है । तभी सब आनन्द की प्राप्ति होती है । यहाँ शुक्लजी गीता का उद्धरण परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं -

'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन'

प्र.3. 'उत्साह' निबन्ध का सारांश लिखिए ।

1. प्रस्तावना :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना साहित्य तथा निबन्ध साहित्य के पितामह माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी आलोचना क्षेत्र में एक विशिष्ठ आदर्श स्थापित किया । अपनी मौलिक रचनाओं के द्वारा उन्होंने निबन्ध क्षेत्र को समृद्ध किया । निबन्ध वैसे गद्य की कसौटी माना जाता है । निबन्ध एक प्रकार से अंग्रेजी साहित्य की देन है । अंग्रेजी में जो लेख (ESSAY) कहा जाता है वही हिन्दी में आकर निबन्ध बन गया है ।

2. उत्साह की परिभाषा :

दु:ख के वर्ग में जो स्थान भय का है, आनन्द-वर्ग में वही स्थान उत्साह का है । साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है । कर्म-सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते है । कष्ट या हानि पूर्वक कार्य भी साहस और उत्साह के साथ किये जाते हैं । कष्ट या हानि के भेद के अनुसार उत्साह के भी भेद होते हैं । साहस और उत्साह में अन्तर होता है । उदाहरणार्थ- बिना बेहोश हुए भारी फोडा चिराने को तैयार होना साहस कहलाता है, पर उत्साह नहीं । धीरता और साहस उत्साहपूर्ण कार्य में साथ देते हैं । दान-वीर, युद्ध और कर्म-वीर उत्साह के अन्तर्गत ही आते हैं । कर्ममात्र के संपादन में होनेवाले तत्परतापूर्ण आनन्द उत्साह कहलाता है ।

3. उत्साह के व्यावहारिक रूप :

मान-अपमान तथा निन्दा-स्तुति की कुछ भी परवाह न करके किसी प्रचलित प्रथा के विरूद्ध पूर्ण तत्परता और प्रसन्नता के साथ कार्य करनेवाले वीर और उत्साही कहलाते हैं । शुभ या अशुभ परिणाम से उनसे कोई मतलब नहीं । कभी-कभी कुछ लोग तुच्छ मनोवृत्ति में भी उत्साह प्रदर्शित करते हैं । 'सुधार' के नाम पर साहित्य के क्षेत्र में भी कुछ लोग गन्दगी फैलाते हैं । आत्मरक्षा, पर-रक्षा, देश-रक्षा आदि के साथ परपीडन डकैती आदि कर्मों में भी उत्साह या साहस की प्रशंसा होती है ।

क्रिया-व्यापार में आनन्द का लगाव होना उत्साह ही है । प्रयत्न और कर्म संकल्प 'उत्साह' नामक आनन्द के नित्य लक्ष्य है । कर्मवीर की तरह बुद्धिवीर भी हो हैं । मुद्राराक्सस नाटक में चाणक्य और राक्षस के बीच नीति की चोटें चली थीं-शस्त्र की नहीं । भारी सभा में शास्त्रार्थी पण्डित से चर्चा करना या भिडना बुद्धि वीरता है । यहाँ शुक्ल जी चुनौती देते हुए कहते हैं-''आजकल बडी-बडी सभाओं के मैचों पर से लेकर

स्त्रियों के उठाये हुए पारिवारिक प्रपंचों तक तस्वीर काफी तादाद में पाये जाते श्रद्धा या दया की प्रेरणा से दान देना भी उत्साह है'' यहाँ आचार्य शुक्ल जी सिद्धान्तीकरण करते हैं-'उत्साह एक यौगिक भाव है, जिसमें साहस और आनन्द का मेल होता है ।'

4. कर्म - भावना और उत्साह :

कर्म भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है, वस्तु या व्यक्ति की भावना नहीं, यहाँ आचार्य शुक्ल एक उदाहरण देते हैं - समुद्र के लिए जिस उत्साह के साथ हनुमान उठे हैं, उसका कारण समुद्र नहीं बल्कि समुद्र लाँघने का विकट कर्म है। किसी कर्म के सम्बन्ध में दिखाई देनेवाली आनन्दपूर्ण तत्परता 'उत्साह' कहलाती है । कर्म के अनुष्ठान में आनन्द की प्राप्ति तीन रूपों में दिखाई देती है -

1. कर्म भावना से उत्पन्न
2. फल-भावना से उत्पन्न और
3. आगन्तुक, अर्थात विषयान्तर से प्राप्त ।

कर्म भावना प्रसूत आनन्द सच्चे वीरों का आनन्द है । युद्ध मैदान में उतरने वाले वीर के सामने कर्म और फल के बीच कोई अन्तर नहीं होता । कर्म-प्रवर्तक आनन्द की मात्रा के हिसाब से शौर्य और साहस का स्फुरण होता है । फल की भावना से उत्पन्न आनन्द साधक कर्मों की और तत्परता के साथ प्रकृत करता है । कर्म-भावना प्रधान उत्साह बराबर एक रस रहता है ।फलासक्त उत्साही असफल होने पर खिन्न और दु:खी होता है । कर्मासक्त उत्साही केवल कर्मानुष्ठान में ही रत रहता है । अत: कर्मभावना-प्रधान उत्साह ही सच्चा उत्साह है । फल-भावना-प्रधान उत्साह लोभ का एक प्रच्छन्न रूप है । यहाँ गीताकार का उद्दरण देना समुचित है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन

5. कर्म और फल की समन्वय अनुभूति :

उत्साह वास्तव में कर्म और फल का समन्वय अमुक स्थान पर जाने से हमें यह निश्चय हो जाय कि दर्शन होगा, तो हमारी यात्रा भी अत्यन्त प्रिय हो जायेगी । फल की इच्छा मात्र से किये जानेवाले प्रयत्न में

आनन्द की प्राप्ति नहीं होती । कर्म-रूचि-शून्य प्रयत्न में कभी-कभी मनुष्य साधना के उत्तरोत्तर क्रम का निर्वाह न कर सकने के कारण बीच में ही चूक जाता है । फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघत की

वासना उत्पन्न होती है । कृष्ण ने भी कर्म-मार्ग से फलासक्ति हटाने का उपदेश दिया था -'कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन।' लेकिन भारतवासी कर्म से उदासीन बैठे होकर फल के इतने पीछे पडे हुए हैं कि गर्मी में ब्राह्मण को एक पेठा देकर पुत्र की आशा करने लगते है, चार आने रोज का अनुष्ठान कराके व्यापार में लाभ, शत्रु पर विजय, रोग से मुक्ति, धन-धान्य की वृद्धि आदि-आदि चाहते हैं। कर्म सामने उपस्थित रहता है, किन्तु आसक्ति फल पर रहती है जो उत्तेजना और आनन्द कर्म करते समय तक बराबर चला रहता है, उसी का नाम उत्साह है ।

6. उपसंहार :

कर्म के मार्ग पर चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अन्तिम फल तक न पहुँचने पर भी उसका आदर कर्म न करनेवाले की अपेक्षा अधिकतर अवस्थाओं में अच्छा रहेगा। फल पहले से ही कोई बना-बनाया पदार्थ नहीं होता । अनुकूल प्रयत्न-कर्म के अनुसार उसके एक एक अंग की योजना होती है । 'बुद्धि-द्वारा' पूर्ण रूप से निश्चित की हुई व्यापार-परम्परा का नाम ही प्रयत्न है । प्रयत्न की अवस्था में मानव का जीवन संतोष, आशा और उत्साह में बीतता है ; अप्रयत्न की दशा में शोक और दु:ख में करता है ।

कर्म में आनन्द अनुभव करनेवालों ही का नाम कर्मण्य है । अत्याचार का दमन और क्लेश का शमन करते हुए चित्त में उल्लास और तृष्टि होती है । वही लोकोपकारी कर्म-वीर का सच्चा सुख है । उत्तम फल या सुख-प्राप्ति की आशा या निश्चय से उत्पन्न आनन्द उत्साह के रूप में दिखाई पडता है । यदि हमारा चित्त किसी विषय में उत्साहित रहता है तो अन्य विषयों में भी हम उत्साह दिखा देते हैं । यदि हमारा मन बढ़ा हुआ रहता है तो हम बहुत से काम प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

करुणा

सप्रसंग व्यख्या :

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है ।

संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है ।

1. **प्रस्तावना :**

यह उद्धरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत करुणा नामक निबन्ध से दिया गया है ।

2. **सन्दर्भ :**

शुक्ल जी यहाँ सारे सद्गुणों का मूलाधार करुणा मानते हैं । संसार का प्रत्येक प्राणी दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति चाहता है ।

3. **व्याख्या :**

मनुष्य के हृदय में करुणा की भावना जितनी ही अधिक होती है उसका स्वभाव उतना ही अधिक शीलवान और सात्विक होता है । हमारे जिन कर्मों से दूसरों के वास्तविक सुख का साधन और दु:ख का निर्वाण होता है, वे ही कर्म शुभ और सात्विक माने जाते हैं और यह भावना करुणा द्वारा ही उत्पन्न होती है । इसी कारण शुक्ल जी शील और सात्विक भावों की उत्पत्ति करुणा से ही मानते हैं ।

संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है । अत: सब के उद्देश्य को एक साथ जोडने से संसार का उद्देश्य सुख की स्थापना और दु:ख का निराकरण हुआ ।

4. **विशेषताएँ :**

(क). करुणा का मूलकारण दूसरों का दु:ख है । सद्गुण का मूलाधार करुणा मानी जाती है ।

प्र.4. 'करुणा' निबन्ध का सारांश लिखिए ।

अथवा

'करुणा' निबन्ध में शुक्ल जी के भावों को स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना साहित्य तथा निबन्ध साहित्य के पितामह माने जाते हैं।

उन्होंने हिन्दी आलोचना क्षेत्र में एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया । अपनी मौलिक रचनाओं के द्वारा उन्होंने निबन्ध क्षेत्र को समृद्ध किया । निबन्ध वैसे गद्य की कसौटी माना जाता है । निबन्ध एक प्रकार से अंग्रेजी साहित्य की देन है। अंग्रेजी में जो लेख (ESSAY) कहा जाता है वही हिन्दी में आकर निबन्ध बन गया है ।

करुणा की मूलभूत अनुभूति 'दु:ख' से होती है । जब बच्चे को सम्बन्ध ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है । तभी दु:ख के उस भेद की नींव पड जाती है जिसे करुणा कहते है । जब माँ झूठ-मूठ करके रोने लगती है तब बच्चे भी रो पडते हैं । दु:ख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उल्टा क्रोध है । क्रोध में दूसरों को हानि पहुँचाने की भावना होती है और करुणा में दूसरों की भलाई करने की । मानव दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है । लेकिन दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम परिमित है । दूसरों के दु:ख के परिज्ञान से जो दु:ख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है ।

संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है । अत: संसार का उद्देश्य सुख की स्थापना और दु:ख का निश्यच हुआ । करुणा मानव में शील और सात्विकता उत्पन्न करती हैं । शुक्ल जी करुणा की तीव्रता को 'जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्य विभाग की घनिष्ट सम्बन्ध हैं ।' दोनों में दूसरों को दु:ख न पहुँचाने का भाव होता है । किसी प्राणी में करुणा की भावना देखकर उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है । इसलिए क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि भावों से करुणा ही सात्विकता का आदि संस्थापक भाव सिद्ध होती है ।

करुणा का विषय दूसरे का दु:ख है । प्रिय के वियोग से उत्पन्न दु:ख में भी करुणा की भावना रहती है । प्रिय के सुख का अनिश्चय, अनिष्ट की आशंका, मिलन का अनिश्चय आदि भाव वियोग की दशा में करुणा की भावना उत्पन्न कर देते हैं । करुणा मनुष्यों के अन्त:करण में सात्विकता की ज्योति जगाती है । इसी कारण जैन और बौद्ध-धर्म में करुणा को बडी प्रधानता दी गई है । गोस्वामी तुलसीदास का कथन है -

पर उपकार सरिस न भलाई ।

पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥ - रामचरित मानस

राम और सीता के वन चले जाने पर कौसल्या उसके सुख के अनिश्चय पर दु:खी होती है -

वन को निकरि गये दोउ भाई ।

सावन गरजै, भादौ बरसै, पवन चले पुरवाई ।

कौन बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई । - गीतावली

श्री कृष्ण के गोकुल से मथुरा चले जाने पर यशोदा करुणा-विलाप करती हैं -

प्रात समय उठ माखन रोटी को बिन माँगे देहैं ?

को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन-छिन आगे लै है ।

और उद्धव से कहती हैं -

सँदेसो देवकी सों कहियो

हों तो छाप, तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो ॥

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है । करुणा द्वारा ही हम दूसरों की सहायता करने को तत्पर हो जाते हैं । दु:खी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा, उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी । एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख कर नहीं होती । दूसरों के विशेषत: अपने परिचितों के, थोडे क्लेश या शोक होने पर जो वेगरहित दु:ख होता है, उसे सहानुभूति कहते हैं ।

मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है पर स्मृति अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघना हुआ अपना देशकाल सम्बन्धी विस्तार बढ़ाता है । उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार बढ़ाता है । उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी -कभी आवश्यक होता है । किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बडे - बडे अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है ।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में ; भावों की तत्परता में है । यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड हैं। मनुष्य हृदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड होता है । उसकी भावुकता का नाश होता है । पाषण्डी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बनाकर कहने लगे हैं - ''करुणा छोडो, प्रेम छोडो, आनन्द छोडो। बस हाथ पैर हिलाओ, काम करो ।''

बहुत से ऐसे अवसर आ पडते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा सकता । जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिणामों का विरोध प्राय: तीन वस्तुओं से होता है – 1. आवश्यकता, 2. नियम और 3. न्याय । यहाँ शुक्लजी एक उदाहरण देते हैं – हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढा और कार्य करने में अशक्त हो गया है जिस से हमारे काम में हर्ज होता है । हमें उसकी अवस्था पर दया आती है, पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पडता है । करुणा का विषय दूसरे का दु:ख है ; अपना दु:ख नहीं । आत्मीय जनों का दु:ख एक प्रकार से अपना ही दु:ख है ।

न्याय और करुणा का विरोध प्राय: सुनने में आता है । यदि अपराधि मनुष्य बहुत रोता, गिडगिडाता और कान पकडता है तथा पूर्ण दण्ड की अवस्था में अपने परिवार की ओर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है ।

करुणा सेंत का सौदा नहीं है, यदि न्यायकर्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक रूप से कर सकता है ।

4. पुस्तक : गद्यविविधा

पाठ : सोना

- महादेवी वर्मा

सप्रसंग व्याख्या :-

पक्षिजात में ही नहीं, पशुजगत में भी मनुष्य की ध्वंसलीला ऐसी ही निष्ठुर है।

1. प्रसंग यह उद्धरण महादेवी वर्म कृत 'सोना' नामक पाठ से दिया गया है।

2. सन्दर्भ मानव की निष्ठुर तथा हिंसक प्रवृत्ति का वर्णन करती हुई महादेवी अपने विचार प्रस्तुत करती हैं।

3. मानव प्रकृति का श्रेष्ठतम रूप माना जाता है। वह जनन - मरण चक्र, पुनर्जन्म, ज्ञान, आत्मा - परमात्मा सम्बन्धी अनेक विषयों की चर्चा करता हैं। मृत्यु वह असुन्दर और अपवित्र मानता है। किन्तु वह प्रकृति के विविध जीव - जन्तुओं को निष्क्रिय और जउ कनाने के का कार्य मनोरंजन कहता है। हिरन पशुजगत में और सुन्दर प्राणी है। पक्षी आत्म का रूप माना जाता है। हिरन जैसा अमायक तथा सात पुशु अन्य कोई संसार में नहीं. ज्ञानशिखर पर अग्रसर होनेवाला मानव पशु - पक्षियों का निष्ठुर ध्वंसलीला क्यों करता है? मानव स्वयं मृत्यु से उरता है। फिर अन्य जीव - जन्तुओं के प्रति इतना कठोर क्यों में विर्शषताएँ (क) मानव प्रकृति का श्रेष्ठतम प्राणी है।

टिप्पणी :-

(ख) मानव स्वयं मृत्यु से डरता है।

(ग) मानव अन्य पशु - पक्षियों के प्रतिकठोर क्यों होता है और उनका ध्वंस क्यों करता है?

कविकुल गुरु कालिदास ने अपने नाटक में वन्य मृग - शावक आदि को इतना महत्व क्यों दिया है। ये हिरन पालने के उपरान्त ही ज्ञात होता है।

2. पशु मनुष्य के निश्छल प्रेम से परिचित रहते हैं, उसकी ऊँची - नीची सामाजिक स्थितियों से नहीं, यह सत्य मुझे सोना से अनायास प्राप्त हो गया।

1. प्रसंग : -

यह उद्धरण महादेवी वर्म विरचित 'सोना' नामक 'रेखाचित्र' से दिया गया है।

2. सन्दर्भ :-

यहाँ महादेवी जी हिरन और मानव का संबन्ध बताती हैं। इस सम्बन्ध में वे कविकृत गुरु कालदिास का उदाहरण देती हैं।

3. व्याख्या :-

महादेवी वर्मा यहाँ कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक की एक घटना बताती हैं। हिरन शावक नेग भोले होते हैं। पशु जगत मानव की स्नेह शीलता पहचानकर तदनुरूप प्रवर्तन करता है।

कण्व के आश्रम में विविध मूक मृग होते हैं। वे उस तापसिक वेतानरण का संग बन जाते हैं। उस मंत्रबद्ध आश्रम में वे मृग अत्यन्त विश्वास के साथ निडर हो कर विचरते हैं। बिदा लेती हुई शकुन्तला को उसका पालित मृगशावक उसका अंचल खींच कर थाम लेता है। साहित्य में और लोक गीतों में भी मृगों का कर्मस्पर्शी योगदान रहता है।

महादेवी जी यहाँ पशुओं की विलक्षण प्रकृति पर भी चर्चा करती हैं। पशु मानव के निरछल प्रेम को पहचानते हैं। मानव की भावना तथा उसका अनुराग पशु जान सकते हैं। इसी प्रकार मानव भी दूसरे मनुष्य से यदि नेत्रों से बात कर सकता हैं। तो बहुत से विवाद भी समाप्त हो जाते । मनुष्य वाणी द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। जिससे कभी - कभी आधात पहुँचता है। वह भाषाहीन पशुजगत से स्नेह की तरल दृष्टि सीख सकता है।

(4) विशेषताएँ : (क) यहाँ मानवता के साथ पशुजगत का सम्बन्ध बताया गया है। (ख) पशुजगत वस्तुत: स्नेहशील होता है। वह मानव की स्नेहशीलता से परिचित होता है। (ग) कालिदास के अभिज्ञान शाकन्तलम् नाटक में मृगशाषक और शकुन्तला का परस्पर प्रेम लतया गया है।

शकुन्तला के बिदा होते समय मृगशावक उसका अंचल पकड कर खींचता है। इसका कारण कुश के काँटेसे हिरणशावक का मुख छिद जानेपर शकुन्तला उसे हिंगोट का तेल लगा कर उसकी बाधा को दूर किया था। (ख) खेद की बात है कि मनुष्य पशुजगत के प्रति निठुर होकर उनका अन्त करता जा रहा है।

प्र.1. महादेवी वर्मा कृत 'सोना' रेखाचित्र का सारांश लिकिए।

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी छायावादी कवियों में महादेवी वर्माका स्थान विशिष्ट और निराला है। सन् 1907 में उत्तरप्रदेश के प्रश्न खा बाद में एक सांस्कृतिक तथा सुसम्पन्न परिवार में आप का जन्म हुआ। आपकी प्राथमिक शिक्षा इन्दौर में हुई। प्रयाण विश्वविद्यालय में आपने बी.ए. और पश्चात एक ए किया। उसी समय आप प्रयाण महिला विद्यापीठ प्रधानाचार्या नियुक्त हुई। फिर उसी संस्था के 'कुलपति' पद पर नियुक्त हुई।

साहित्यिक जीवन बारह साल की अवस्था में ही महादेवी ने काव्य सृजन प्रारम्भ किया था। माँ से सुनी कहानियों के आधार पर बचपन से ही आप गीत रचना करती थीं। विद्यार्थी - जीवन में आपने राष्ट्रीय जागरण के गीत लिखे। मानव जीवन की प्रधान घटनाओं के प्रतीक में महादेवी ने 'नीहार','रश्मि','नीरजा', 'सन्ध्यागीत', तथा 'दीपशिखा' काव्यों की रचना की। अतीत के चलचित्र, 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला' की कडियाँ आदि आप की अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं।

महादेवी का काव्य वेदनामय है। लेकिन बेदना लौकिक से भिन्न होकर पारलौकिक है। इसी कारण आप में अनुभूति की तीव्रता होती है। 'नीर भरी दुख की बदली', 'आधुनिक मीरा' इत्याधि उपाधियों से साहित्य प्रेमी महादेवी का आदर करते हैं। आप सफल चित्रकारिणी भी हैं।

1934 में 'संकारिया' पुरस्कार, 'मंगलाप्रसाद' पुरस्कार, 1956 में 'पद्मभूषण' और 1982 में 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार महादेवी को प्राप्त हुए। इनके अलावा आपको जीवन भर अनेक सम्मान एवं उपाधियाँ प्राप्त हुई।

(2) सारांश :-

महादेवी जी 'सोना' रेखाचित्र के द्वारा अबोध, अमायक तथा साधु हिरणशावक की करुण कथा प्रस्तुत करती है। हिरण वनप्रदेश में स्वच्छन्द रूप से विचरते रहा हैं। कहीं शिकारियों की आहार होने से हिरणों का झुण्ड भाग जाता है । किन्तु सद्य: प्रसूता सोना की माँ भागने में असमर्थ रह जाती है। मृगी माँ अपनी सन्तान अपने शरीर की आड में सुरक्षित रखने के प्रयास में प्राण खो जाती है। कुतूहल प्रियता के कारण शिकारी मृत हिरणी के साथ उसके रक्त से सने और ठण्डे स्तनों से चिपटे हुए। शावक को जीवित उठा लाता है। शिकारी की सदय गृहिणी और बच्चे उसे पानी मिला दूध पिला कर दो चार दिन जीवित रखते हैं - एक दिन मुमूर्ष (मूर्छित) अवस्था में उस अनाथ मृगशाषक को लेकर महादेवी के पास आती है। करुणामयी महादेवी उस शावक को अपने पास रख लेती है।

स्निग्घ सुनहले रंग के कारण सब उसे 'सोना' कहने लगते हैं। महादेवी जी 'सोना' को निपल से दूध पीने और बैठक को स्वच्छ रखने का अभ्यास कराती हैं। प्रयाग विद्यापीठ की छात्राओं से सोना का हेलमेल होता है। छागावास में पहुँचते ही छात्राएँ और नौकर-चाकर सत उसके आत्मीय बन जाते है॥ दूध-पानी पीनाचने खाना और चौकडी भरते हुए छात्रावास के कमरों का निरीक्षण करना सोना की दिनचर्या बन जाती है। उसे छोटे बच्चे अधिक प्रिय होते है क्योंकि उनके साथ खेलने का अधिक अवकाश रहता है। घंटी बजते ही वह प्रार्थना के मैदान में पहुँच जाती है और उसके समाप्त होते ही कक्षाओं के भीतर - बाहर चक्कर लगाती रहती है। छात्राएँ उस के माथे पर कुमकुम का टीका लगा देती हैं और बिस्कुट आदि खिलाती हैं। भोजन का समय स्वयं जान लेती है और साथ ही महादेवी के पास होती या भोजनालय में।

लाइन में बैठे छोटे - छोटे बच्चों के ऊपर से सोना एक ओर से दूसरी ओर छलांग लेती हैं। महादेवी के प्रति वह विविध - रीतियों में स्नेह - प्रदर्शन करती है। बाहर खडे होने पर वह सामने या पीछे से छलांग लगाती और उनके सिर के ऊपर से दूसरी ओर निकल जाती हैं। महादेवी के पैरों से वह अपना शरीर रगडने लगती है। कभी वह उनकी साडी का छोर मुँह में लेकर चबा डालती है और कभी पीछे खडी होकर चुप चाप चोटी को चबा डालती हैं डाँटने से एकटक देखने लगती है कि महादेवी को हँसी आ जाती।

यहाँ महादेवी हिरण और कुत्ते के स्वभाव का अन्तर बताती हैं। कुत्ता स्वामी और सेवक का अन्तर जानता है और स्वामी की स्नेह या क्रोध की मुद्रा से परिचित रहता है पर हिरन यह अन्तर नहीं जानता। कैसे तो पशु मनुष्य के निश्छल स्नेह से परिचित रहते हैं। उसकी ऊँची - नीची सामाजिक स्थितियों से नहीं।

वर्ष भर का समय बीत जाने पर सोना हिरण - शावक से हरिणी में परिवर्तित होती हैं। प्लोरा कुतिया चार बच्चों को जन्म देती है। एक दिन फ्लोरा कहीं बाहर धूमने जाती है तो सोना उन बच्चों के साथ लेट जाती है और पिल्ले चीची करते हुए सोना के उदर में दूध खोजते रहते हैं। पिल्ले बडे होने पर भी वे सोना के साथ धूमने लगते हैं और उससे साथ आनन्दोत्सव मनाते हैं।

उसी वर्ष गर्मियों में महादेवी का बदरीनाथ यात्रा कार्यक्रम बनता है। छात्रावास बन्द रहता है और सोना के नित्य नैमित्तिक कार्यकलाप भी बन्द हो जाते हैं। महादेवी की अनुपस्थिति में सोना के आनन्दोल्लास का भी अवकाश नहीं रहता है। महादेवी के निकलने पर सोना निराश जिज्ञासा और विस्मय के साथ देखती रह जाती है।

छात्रावास के सन्नाटे और फ्लोरा और महादेवी के अभाव के कारण सोना अस्थिर हो इधर -उधर खोजती - भी कभी कम्पाउण्ड के बाहर निकल जाती है। इतनी बडी हिरणी को पालनेवाले तो कम होते हैं,

परन्तु उस में खाद्य और स्वाद प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति बहुत होते हैं। इसी आशंका से माली उसे मैदान में एक लम्बी रस्सी से बान्ध देता है। एक दिन न जाने किस पीडा जन्म जडता की अवस्था में सोना रस्सी की सीमा और बन्धन को भूल कर बहुत ऊँचाई तक उछलती है और मुँह के बल धरती पर जा गिरती है। वह उसकी अन्तिम साँस और अन्तिम उछाल होती है। उस सुनहले रेशम की गठरी - से शरीर को गंगा में प्रवाहित कर आते हैं। इस प्रकार किसी निर्जन वन में जन्मी और जनसंकुलता में पली सोना की करुण कथा समाप्त होती है।

(3) उपसंहार :-

ममतामई तथा करुणामई महादेवीजी के बदरी से लौटने पर सोना की अन्तिम यात्रा सुनकर खेद प्रकट करती है। महादेवी जी रेखाचित्र के रूप में 'सोना हिरणी' की करुण कहानी प्रस्तुत करती हैं। महादेवी स्वयं कहती हैं। 'सप्तति - यात्रा' में पशु - पक्षी ही मेरे प्रथम संगी रहे हैं।

वस्तुत: यह रेखाचित्र महादेवी की पुस्तक 'मेरा परिवार' से संगृहीत हैं जो स्मृति की रेखाओं में एक हैं। इस रेखाचित्र में कथानक के साथ-साथ छात्रावास की छात्राएँ, वहाँ के नौकर, फ्लोरा, हेमन्त- वसन्त आदि, पाणों की चर्चा हुई हैं। कथोपकथन तो सौना की चौकडी में समा गये हैं। छात्रालय का तथा विद्यालय का का वातावरण सहज रूप से चित्रित है। भाषा - शैली साहित्यिक होकर भी विवरणात्मक रूप में चलती हैं। शीर्षक 'सोना' अत्यन्त उपयुक्त है।

अबोध हिरणों (पशुओं) का शिकार खेलना उन पशुओं को खाने का वातावरण भी बताया गया है।

महादेवी जी सोना के अक्षर रूपी रेखाचित्र द्वारा उसके आन्तरिक रेखाओं का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

Lesson Writer

- अन्ना नागलक्ष्मी एम. ए.

पाठ : घर लौटते हुए

प्र.2. 'घर लौटते हुए' शीर्षक में बच्चन के भाव पर विचार कीजिए।

1. प्रस्तावना :-

हालावाद के प्रवर्तक श्री हरिवंशराय बच्चन का आधुनिक हिन्दी साहित्य धारा में एक विशिष्ट स्थान हैं। 'मधुशाला', 'मधुबाल', 'मधुकलश', 'निशा', 'नियन्त्रण', 'आकुल अन्तर' आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। 'नये पुराने झरोखे' आपका निबन्ध संग्रह है। 'नीड् का निर्माण फिर - फिर', 'क्या भूलूँ - क्या याद करू', 'बसेरे से दूर', 'प्रवास की डायरी', आदि आप की आत्म - कथात्मक रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत परिच्छेद 'घर लौटने हुए' 'बसेरे से दूर' नामक आत्मकथा से लिया गया है। बच्चन जी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शोधकार्य करके लौटने के समय की बात है।

2. प्रारम्भ :-

'घर लौटते हुए' परिच्छेद बच्चन की 'आत्मकथा' 'बसेरे से दूर' से है। यह कलात्मक एर्न बावात्मक शैली में रचा गया है। आत्मकथा में लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन के साथ अपने से सम्बन्धित संसार की दूसरी भावनाओं को भी व्यक्त करता है। इस परिच्छेद में बच्चनजी अपनी निजी घटनाओं के साथ कैंतिज के दोस्तों और वहाँ की प्राकृतिक छटा तथा सेंट कैयरीन और उनकी आस्था के प्रतीक परिए के विषय में अपनी मानसिक भावनाओं का भावात्मक तथा कलात्मक शैली में सफल सफल चित्रण किया है। हरिवंशराय बच्चन साहित्यिक क्षेत्र के प्रवर्तक तथा उच्च कोटि के गद्य लेखक के रूप में आपने हिन्दी साहित्य जात में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

3. कैम्ब्रिज से बिदा :-

1954 की बात थी।

घर लौटते समय बच्चन जी के पास कुछ पैसे नहीं थे। आर्थिक विडम्बना के कारण उनका मन अस्थिर - सा था। एक मित्र ने दस पौण्ड देकर उनको उस चिन्ता से मुक्त किया जिससे बच्चन ने अपने पुत्र अमिताभ और अजिताभ के लिए बिजली से चलनेवाली रेलगाडी और राजन के एक टाई खरीदते हैं। कैम्ब्रिज की प्राकृतिक शोभा देखने व्यतीत करने लगे। उनको हठात कैम्ब्रिज छोडने का दुख होने लग और दूसरी ओर घर लौटने का भी कौतुक हो रहा था। यात्रा से लौटते समय हर किसी को सुख भी होता है और दु:ख भी।

कैम्ब्रिज की आखिरी सुबह मित्रों के साथ नाश्ता करके बच्चन ने उन को कुछ गीत सुनाये। सुबह दस

बजे की ट्रैन से उन्हें लन्दन खाना होना था। लन्दन जाने से पहले वे अपने शोघ शिक्षण संस्थान सेन्ट कैथरीन्स कालेज को एक बार नजर भर देखना चाहते थे। सेंट कैथरीन एक पवित्र एवं धार्मिक नारी थी उनको रोमवासियों ने लोहे के पहिए के नीचे कुचल - कुचल कर प्रामांतक पीडाएँ दीथीं। कालान्तरं में वही पहिया सेंट कैथरीन की श्रद्धा तथा अटल विश्वास का प्रतीक माना जाने लगा। बच्चनजी ने उसी पहिए से दु:ख सहने की अद्‌भुत शक्ति एवं प्रेरणा प्राप्त की। बिदा की बेल भी वे एक क्षण भर के लिए उस पहिए के आगे सिर झुका कर भविष्य के लिए उससे अदम्य शक्ति सहन कर पाने की प्रार्थना की। उसी समय मि. हेन भी 'शुभ यात्रा' की कामना करते हैं।

4. लन्दन से बिदा :-

15 वीं तारीख बच्चन के लिए इंग्लैण्ड के लिऐ अन्तिम दिन था। भारत जाने वाले जहाज में उनका सामान चढ़ा दिया गया था। 18 वीं तारीख को लन्दन में होनेवले कवि सम्मेलन के लिए अपनी आवाज रिकार्ड की गयी थी। 'क्यू गार्डन' की फुलवारी में घूमते समय उनको अपनी प्रिय पत्नी और अपने प्रिय बच्चों की याद आती थी। उन रंग -बिरंगे फूलों एवं हरे - भरे वृक्षों के बीच से उनको तेजी तथा अमिताभ और अजिताभ के झाँकते हुए चेहरे नजर आते थे। होटल में पहली रात से लेकर उस दिन की आखिरी रात तक की सुख दु:ख की अनेक घटनाएँ उन्हें याद आने लगी और उन्हीं विचारों के बीच उन्हें नीन्द आयी।

5. उपसंहार :-

'घर लौटते हुए' आत्मकथात्मक रचना में बच्चन जी की सुक तथा दु:ख दोनों की मानसिक स्थितियों का सम्मिलित चित्रण हुआ है। आर्थिक अव्यवसर वियोग के समय हँसती हुई प्रकृति कैम्ब्रिज और वहाँ के मित्रों से अलग होने का दु:ख, सेंट कथरीन की बलिदानी मूर्ति से दु:ख सहने की अदम्य प्रेरणा तथा क्यू गार्डेन की प्रकृतिक छटा आदि सारी भावनाओं का चित्रणे इस आत्मकथा में सहज, स्वाभाविक और सफलता पूर्वक हुआ हैं। प्रकृति प्रेम, दार्शनिकता, कवि, कृतज्ञता, चिन्तन एवं अन्वेषण आदि प्रवृत्तियां बच्चनजी की इस कृति में प्राप्त होती हैं।

निस्संकोची प्रवृत्ति के कारण बच्चन जी ने अपने अंतरंग की बातें आत्मकथा के रूप में व्यक्त की है। सत्यंवाहिता, स्पष्टता यथार्थता और ईमानदारी इस रचना में स्पष्ट होती हैं। कैम्ब्रिज तथा लन्दन के अन्तिम क्षणों का हृदय स्पर्शी चित्रण हुआ हैं।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

5. सात श्रेष्ठ कहानियाँ

पाठ : प्रेरणा

प्र. 1. कहानी के तत्वों के आधार पर 'प्रेरणा' कहानी की समीक्षा कीजिए।

प्र. 1. रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के उपन्यास तथा कहानी क्षेत्रों में मुन्शी प्रेमचन्द का स्थान अनुपम तथा अद्वितीय है। निम्न वर्गीय, मक्य वर्गीय, परिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्थाओं को आकार बनाकर प्रतिज्ञा, वरदान, निर्मला, गबन, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगार कर्मभूमि, गोदान आदि बारह उपन्यासों की और कमन, बडे भाई साहब, बडे घर वी बेटी, पूस की रात, ईदगाह, ठाकुर का कुआँ, पंचपरमेश्वर, शंखनाद आदि 270 कहानियों की रचना की। उनकी प्रमुख कहानियाँ मानसरोवर नामक आठ भागों में प्रकाशित हैं।

पाश्चात्य साहित्य संप्रदाय से यथार्थवाद और भारतीय साहित्य विचारधारा से आदर्श वाद को लेकर प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुकी यथार्थवाद को जन्म दिया भारतीय जन - जीवन की नस - नस का चित्रण करके प्रेमचन्द साहित्य द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। विविध दशाओं में होनेवाली कुरीतियों का प्रतिबिंब प्रेमचन्द साहित्य में दर्शित होता है। उनके साहित्य में भारतीय जन - जीवन में होनेवाली समस्याएँ और उनका समय प्राप्त होता है। उनका सारा साहित्य यथार्थ की पर आधारित है और उस पर वे एक महान आदर्श में महल खडा कर देते हैं।

2. उद्देश्य :-

कोई भी व्यक्ति जीवन - भर बुरा नहीं होता। समय आने पर उस में परिवर्तन आने की सम्भावना है। बारह - तेरह साल के उद्दण्ड बालक का सुधार अनुभवी तथा शिक्षण शास्त्र के आचार्य कर न पाते हैं। मोहन नामक आठ - नौ साल के लडके की प्रेरणा से ऊधमी, कपटी और उद्दण्ड लडका सूर्यप्रकाश संयमन तथा कठिन परिश्रम के कारण डिप्टी कमिशनर बनजाता है। चरित्र - परिवर्तन के लिए कोई मोड या प्रेरणा होती है। इसी उद्देश्य पर प्रेरणा कहानी की रचना हुई हैं।

3. कथानक :-

मुन्शी प्रेमचन्द कथानक उत्तम पुरुष में प्रस्तुत करते हैं। बे अपने को एक अध्यापक के रूप में प्रस्तुत

करते हैं जहाँ एक उद्दण्ड, कपटी, नटखट और ऊदमी लडके सूर्यप्रकाशक सामना करना पडता हैं। स्कूल के मुआइने के समय उसकी शराफत के कारण प्रिंसिपल और अध्यापकों की बदनामी होती है कहीनीकार प्रेमचन्द कक्षा में दराज खोलते हैं तो उसमें से एक मेंढ़क निकल पडता है। प्रेमचन्द उसेपरीक्षाओं में फेल करना चाहते हैं। लेकिन सूर्यप्रकाश का उत्तर पत्र देख कर स्वयं प्रेमचन्द अचरज में आजाते हैं। वह कक्षा में प्रथम अता है।

उसी साल प्रेमचन्द का तबादला होता है। एक प्रकार से प्रेमचन्द खुश होते हैं, क्यों कि सूर्यप्रकाश उनके मार्ग का काँटा न रहेगा। बिदाई के समय स्टेशन पर सारे छात्र आते है और आँसुओं के साथ बिदाई देते हैं। सूर्यप्रकाश दूर खडा होता है, गीली आँखों से। प्रेमचन्द भी उस से कुछ बोलते नहीं। किन्तु अपने व्यवहार पर उनको खेद होता है। फिर वे अन्य विद्यालय के प्रिंसिपल बनते हैं। विविध कारणों से वे नौकरी को इस्तीफा देकर नदी के किनारे एक छोटी - सी पाठशाला खोलते हैं। एक वृक्ष की छाया में गाँव के लडकों को जमाकर पढ़ाते रहते हैं।

एक दिन पाठशाला के पास एक मोटर आकर रुकती हैं। उसमें से जिले के डिप्टी कमिशनर प्रेमचन्द की ओर झुककर, पैरों पर सिर रख कर प्रणाम करता है प्रेमचन्द के लिए वह अनूह अनुभव है। कमीशनर और कोई नहीं, नटखट और उद्दण्ड सूर्य प्रकाश ही है, बारह - तेरह वर्षा के बाद मुलाकांत होती है। वह अपने अपराधों को क्षमा कराने के लिए आया हैं।

प्रेमचन्द के उस स्कूल से चले जाने के बाद सूर्यप्रकाश अपने मामा के आठ - नौ साल के पुत्र मोहन की सेवा - शुमूषा में संलग्न रहता हैं। उसके साथ आत्मिक पनपता हैं। गर्मियों की छुट्टियों में सूर्य प्रकाश काश्मीर का सैर करने जाता है तो मोहन की मृत्यु हो जाती मोहन की आत्मा की प्रेरणा से कठिन परिश्रम करके वह डिप्टी कमिशनर बनता है।

4. पात्र तथा चरित्र - चित्रण :-

प्रेरणा कहानी में पात्र तथा चरित्र - चित्रण यथातथ्य हुआ है सूर्यप्रकाश का चरित्र उद्दण्ड, कठोर और नट खट के रूप में प्रार्म्भ होता है। सारे अध्यापक उसे सुधार न पाते हैं और उल्टे उस के कारण लिख भी हो जाते हैं। मोहन अज्ञात पात्र के रूप में रहने पर भी सूर्यप्रकाश के लिए वह प्रेरणापद होता हैं। प्रेमचन्द`क आदर्श अध्यापक के रूप में प्रस्तुत होने हैं। अन्त में सूर्य प्रकाश डिप्टी कमिशनर के रूप में आना एक प्रेरणा और सच्चा मोड है।

5. कथोपकथन :-

प्रेरणा कहानी वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक विधान में चलती हैं। कहानी में कथोपकथन अधिक नहीं। जो हैं वे अत्यन्त प्रभावोत्पादक होकर चरित्र का विवरण देते हैं।

प्रेमचन्द :- तुम इस कक्षा में उम्रभर पास नहीं हो सकते।

सूर्यप्रकाश :- आप मेरे पास होने की चिन्ता न करें । मैं हमेशा पास हुआ हूँ अब की भी हो जाऊँगा।

प्रेमचन्द :- असंभव!

सूर्यप्रकाश :- असंभव संभव हो जायगा।

फिर कमीशनर होने के बाद सूर्यप्रकाश स्वयं कहता है - ''जीहाँ मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ। .....''

6. वातावरण :-

कहानी का वातावरण पूर्णतया विद्याविधान का हैं। हाईस्कूल में बाईस अनुभवी और शिक्षण शास्त्र के आचार्य एक बारह - तेरह साल के उद्दण्ड बालक सूर्यप्रकाश का सुधार न कर सकते हैं। स्कूल में अध्यापकों को सदा खटका लगा रहता है कि उस दिन कौन - सी विपत्ति आनेवाली हैं।

मुठाइने में खलबली मचाना, इंस्पेक्टर का कैफियत मैं - डिसिप्लिन बहुत खराब लिखना, मेज की दराज में मेंढ़क को लाकर रखना छात्रों की उद्दण्डता का वातावरण है। सारे अध्यापक छात्रों को सुधार न पाना उनकी निस्सहाय स्थिति है।

प्रेमचन्द के प्रिंसिपल बन कर कुछ आक्षेपों के कारण नौकरी को इस्तीफा देदेना विद्याप्रणाली में राजनीतिक व्यवस्था का कारण (वातावरण) है फिर अन्त में सूर्यप्रकाश का परिवर्तन और कमीशनर बनना कठिन परिश्रम, प्रेरणा तथा आत्मबल का वातावरण है।

7. भाषा - शैली :-

प्रेरणा कहानी की भाषा उर्दूमिश्रित खडी बोली है। साधारण समावेश व्यवहारिक भाषा में मुहावरे शैली में कहानी आगे बढ़ती हैं। सिर नीचे झुकाने मुस्कराना, 'मक्खी निगलना','मार्ग का काँटा रहना', लज्जित खडा रहना, 'आँखें भीगना', 'झिझकना', 'इस्तीफा', आदि मुहावरों का समावेश सहज रूप में हुआ है। पाठक कहीं ऊबता नहीं, एक ही साँस में कहानी पढ़ डालता है। कहानी आत्मकथात्मक शैली में अग्रसर हो हैं।

8. शीर्षक :-

कहानी का शीर्षक 'प्रेरणा' अत्यन्त उपयुक्त हैं। सूर्यप्रकाश प्रथमत: उद्दण्ड रहता है। उसकी उद्दण्डता मोहन की सेवा-निरति में परिवर्तित होती है। सदा उसे नहाने - खिलाने आदि सेवाएँ करते - करते उसका हृदय तत्व जागृत होता है। मोहन के चलबसने पर उसकी आत्मा की प्रेरणा से सूर्यप्रकाश जागरित होता है। उसकी उद्दण्डता अध्ययनशीलता में परिवर्तित होती है। अत: 'प्रेरणा' शीर्षक कहानी के लिए उपयुक्त रचा गया है।

9. उपसंहार :-

प्रेमचन्द इतने महान हैं उनका सम्पूर्ण साहित्य भारत की सारी भाषाओं में और विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनूदित किया गया हैं, संत कबीर के पश्चात प्रेमचन्द ऐसे महान साहित्यकार हैं जिन्होंने सामाजिक विकमताओं का खण्डन करके समाज को सुधारने का प्रयत्न किया और समाज को आदशोन्मुख करने का प्रयत्न किया।

प्रेमचन्द उपन्यास तथा कहानी क्षेत्रों में महान योद्धा हैं। वे अपनी कलम को जिधर या उधर मोड सकते हैं। इसी कारण के कलम के सिपारी, उपन्यास सम्राट तथा कहानी सम्राट आदि उपाधियों से आभूषित किये गये।

Lesson Writer

- कोन लावण्य, एम.ए.

(104HN21)

M.A. DEGREE EXAMINATION, APRIL 2022.

First Semester

Hindi

Paper IV — HINDI PROSE

Time : Three hours Maximum : 70 marks

हिन्दी गद्य साहित्य

प्रथम प्रश्न अनिवार्य है। (4 × 7½ = 30)

शेष प्रश्नों में से किन्हीं चार–प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(4 × 10 = 40)

1. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

(a) (i) ''अब तो किसी भाँतिसिर का बोझा उतारना था, किसी भाँती लड़की को पार लगाना था - उसे कुएँ झोंकना था। यह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर, कुलीन हैं ती हुआ करे, दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं; दहेज हो तो सारें दोष गुण है प्राणी का कोई मूल्य नहीं; केवल देहेज का मूल्य है।

अथवा

(ii) मातृप्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से निलीहुई। इस प्रेम में करूणा थी, पर वह कठोरता न थी जे आत्मीयता का गुप्त संदेश है। स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता हैं? लेकिन वही अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है।

(b) (i) ''मुझे भारत की सीमा से दूर ले चलिए नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी। जाओं प्रियतम सुखी जीवन बिताने के लिये और मैं जाती हूँ चिर दुखी जीवन का अंत करने के लिये।''

अथवा

(ii) राज्य किसी का नही है। सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं, प्राच्य में सूर्योदय हुआ है।

(c) (i) यदि तुम मेरे पति हो तो मैं तुम्हें अपना सब कुछ ही दे सकती। मेरी इच्छा है, मेरे शौक है। मैं मजबूर नहीं हूँ कि एक ही दुकान से हमेशा सौदा खरीदती रहूँ।

अथवा

(ii) आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा में ही उत्साह का दर्शन होता है, केवल कष्ट सह्ने के विश्चेष्ट साहस में नहीं। धृति और साहस दोनों का उत्साह के बीच सेचरण होता है।

(d) (i) ''क्षमा कीजिए इस में महाराज की शक्ति का अपमान नही है। मेरे कलिंग के लोग वीर है। वे माता की तरह अपनी भूमि का आदर करते है। जब तक एक भी वीर है, तब तक कलिंग की जय का घोष वायु को सहना ही पड़ेगा''।

अथवा

(ii) बाप सेर है तो लड़का सवा सेर-कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी''

2. (a) चन्द्रगुप्त अथवा चाठाक्य का चरित्र-चित्रण कीजिये।

अथवा

(b) चन्द्रगुप्त नाटक की कथा वस्तु की समीक्षा कीजिए।

3. (a) 'निर्मला' उपन्यास में व्यंजित सामाजिक समस्याओं की समीक्षा कीजिए।

अथवा

(b) निर्मला उपन्यास में प्रतिपादित समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

4. (a) महाभारत की एक साँझ अथवा ''रीढ़ की हड्डी एकांकी की कथा वस्तु की समीक्षा कीजिये।

अथवा

(b) एकांकी के तत्वों के आधार पर 'सूखी डाली' और 'महाभारत' की एक साँझ का विश्लेषण कीजिए।

5. (a) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) उत्साह

(ii) श्रद्धा एवं भक्ति

(iii) रूक्मिणी

(iv) निर्मला

अथवा

(b) किन्हीं <u>दो</u> पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) ठेस कहानी

(ii) अपरिचित

(iii) चिंतन चालू है।

(iv) यात्रावृत्तांत